

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180726

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. *H83*

Accession No. *H3166*

Author *R14R*

Title *ਸਤਿ ਨਾਮੁ ਕਰਤਾ*

This book should be returned on or before the date last marked below.

राई और पर्वत

[सामाजिक उपन्यास]

रांगेय राघव

राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली



मूल्य : तीन रुपये
प्रथम संस्करण : अगस्त, १९५८
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
मुद्रक : हिंदी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

दो शब्द

समाज की विषमता एक पर्वत है जिसके सामने व्यक्ति क्या है ? एक राई । पर यह राई क्या है सचमुच ! क्या यह किसी पर्वत से कम है ! संघर्ष, यथार्थ, जातिप्रथा, विवाह-प्रथा, पुलिस, न्याय, पत्रकारिता, सबको लेखक ने एक एसी गहराई से देखा है कि एक नया ही चित्र आता है सामने ।

यथार्थ में सफल चित्रण और दुःख की वास्तविकता, यह तो बहुत है आज । परंतु उसमें से उदात्त पात्रों का जीवंत चित्रण, ऐसे पात्र जो याद रह जायें, यह रांगेय राघव की विशेषता है । हर रचना एक ठोस भूमि लाती है ; लिखने के लिये कारण है, जो स्वयं बोलता है ; कोई युग हो उसका मनुष्य हँसाता है, दलाता है । विद्या और रामभरोसे जैसे पात्र कभी-कभी चित्रित होते हैं जिनमें हृदय की झकझोर कर रख देने की शक्ति मिलती है ।

—प्रकाशक

थाने की छाया में घास भी डरते-डरते उगती है, क्योंकि भारी बूटों के नीचे पिस-पिसकर माटी धूल बन जाती है। पत्थर की इमारत देखकर इंसान को जो खुशी होती है, उसे अगर हटाना हो तो उस पर लिख देना चाहिये—‘थाना’। ज्ञान फैलाने को कॉलेज, स्कूल बनते हैं; इलाज के लिये अस्पताल; इंसाफ़ के लिये अदालत और अमन और चैन कायम रखने के लिये थाना बनता है। अक्लबंद करने का रोज़गार स्कूल-कॉलेजों में होता है, अस्पताल से अक्सर मुर्दे भी निकलते हैं, और अदालतों में भी कभी-कभी इंसाफ़ की झलक मिल जाती है; मगर लोगों का ग्राम ख़याल यही है—थाने में शराफ़त नहीं होती। सब जानते हैं कि अगर ‘थाना’ न हो तो गुण्डों का राज कायम हो जाये, आदमी का रास्ता चलना मुश्किल हो जाये, लेकिन दुनिया है कि इतनी अच्छी जगह को भी अच्छा नहीं समझती, गोया आदत हो गई है कि हर अच्छी चीज़ पर नुक़ताचीनी की ही जाये, क्योंकि सामने पड़ने पर सब ही दरोगा से बड़ी मिठास से बोलते हैं।

बाहर पेड़ ज़रूर हैं थाने के। उन पर परिंदे भी बैठते हैं, मगर परिंदे आदमी नहीं होते, लिहाजा उन्हें कोई सरोकार नहीं होता।

गाँव का यह एक कोना है, इसके पीछे खेत शुरू हो जाते हैं और खेतों में जब सिर फूटते हैं तब इस थाने में से लंबी-सी भुजा निकल पड़ती है जो हर तरफ़ मुड़ने की ताक़त रखती है।

पास में स्कूल है, जहाँ बच्चे पढ़ते हैं। यों गाँव अच्छा-खासा है, अगले गाँव में तहसील भी है, अस्पताल भी है जहाँ डॉक्टर भी रहता है।

ऐसे इस गाँव में, राजस्थान की सरहद पर जहाँ उत्तर प्रदेश मिलता है, उत्तर प्रदेश की सरकार का राज चलता है, जब कि लोग बोलते यहाँ ब्रज भाषा है और खड़ी बोली भी अब प्रायः चल पड़ी है। संस्कृतियों को राज्यों

का परिवर्तन बदलता है, परंतु अभी तक कोई भी परिवर्तन थाने में कोई विशेष परिवर्तन नहीं ला पाया है।

दरोगाजी गंभीर-से बैठे थे।

सामने हुक्का था। दरोगाजी ने आखिरी कश खींचकर नै को सरका दिया।

एक सिपाही उसे उठा ले गया।

दूसरे ने आकर सलाम किया।

दरोगाजी ने आराम से पलकें ज़रा उठाकर आने वाले पर शाही नज़ाकत से गौर फरमाया।

‘सरकार, कुछ अर्ज करने आया था ताबेदार।’

दरोगाजी ने सिर हिलाया। दीवान जी ने प्रवेश किया।

‘क्यों जुम्हार सिंह?’ दीवान जी ने सिपाही से कहा : ‘तुमने सरकार से अर्ज कर दिया?’

‘नहीं हुजूर ? इजाजत दें सरकार तो...’

‘वो एकसीडेंट हो गया था,’ दीवान जी ने याद दिलाया।

दरोगाजी ने अँगड़ाई ली और कहा : ‘ठीक है। अब तो केस साफ होगया न ? मोटर वाला क्या कहता है?’

‘सरकार आठ सौ तक तैयार है।’

दीवान जी ने रहस्यमय दृष्टि से दरोगाजी की ओर देखा। दीवानजी ने कहा : ‘उधर का कानसटिबल है शौपरसाद...’

‘नहीं, नहीं, जिसका जो हल्का है वही’ दरोगा जी ने काटकर कहा ‘मामले को तैयार करके पेश करे। वर्ना कायदा ही बिगड़ जायेगा। ऊपर तक का खयाल रखना पड़ता है।’

‘हुजूर शौपरसाद का कहना है कि मामला नाजुक है।’

‘क्यों?’

‘हुजूर बटुक बिहारी कांगरेसी नेता है और उसकी पहुँच एमेले सा’ब तक है।’

‘हिश, हिश...साला नेता है तो क्या ? एम० एल० ए० वही न ? जूतियाँ चटखाता है साला । वक्त की बात है । अफीम का केस पड़ा था, याद है न ? धर घेरता साले को, पर छोड़ दिया सोचकर कि कभी मिनिस्टर-विनिस्टर के यहाँ काम आवेगा ।’

यह व्यापार की बातें अब जोम पर आई ही थीं कि बाहर के सिपाही ने पुकारा : ‘हुकम देर !’

आवाज़ जोर के गूँज उठी !

इसी समय बाहर से दौड़ता हुआ एक व्यक्ति हाँफता हुआ भीतर घुसा ।

‘दरोगाजी ! दरोगाजी !’

‘अरे कौन है ?’ दरोगाजी ने पूछा ।

‘मैं देखता हूँ ।’ दीवानजी ने उठकर कहा ।

दीवानजी ने भारी शरीर को आगे सरकाया और भारी स्वर से बोले : ‘साले बेवक्त भी शोर करते हैं ।’

‘मैं कहता हूँ मुझे जाने दो !’ कहता हुआ आगन्तुक भीतर आ घुसा ।

‘अरे किशन तू ?’ दीवानजी ने पूछा ।

किशन का हाँफना बंद नहीं हुआ था ।

‘अबे बोलता क्यों नहीं ?’

‘गजब हो गया सरकार !’ उसके स्वर में आतंक था, जिसे सुनकर सब लोगों में एक हैरत पैदा हो गई ।

दरोगाजी का हाथ अनजाने ही कमर में लटकी पिस्तौल पर चला गया ।

‘क्यों ? क्यों ?’ दीवानजी ने कहा ।

किशन ने मुँह खोला, परंतु घबराहट के कारण वह टुकुर-टुकुर देखता रह गया ।

‘अबे बोलता है कि साले से जबरन बुलवाऊँ । बदमाशी करता है हुजूर के आलम में...।’

‘कतल हो गया हुजूर...!’ वह फूट पड़ा और उसने दरोगाजी के घुटने पकड़ लिए और धिधियाते हुए कहा : ‘खून हो गया सरकार ! आपके राज में खून हो गया...!’

उसका स्वर थाने के भीतर जैसे गूँज उठा ।

कतल !

‘कहाँ हो गया कतल !’ दीवानजी ने फिर अपने भारी स्वर से कहा ।

रात के अंधेरे में बाहर की ओर किशन ने काँपते हाथ से दिखाकर कहा : ‘उधर...गाँव में...’

बाहर फेरी देती ‘रौंद’ तक यह आवाज़ पहुँच गई । उन्होंने बन्दूकें खड़खड़ाईं ।

‘गाँव में किसके यहाँ !’

‘सत्ती के घर ।’

‘सत्ती कौन ?’

‘सरकार जो आज सत्ती हो गई ।’

‘ला बे मेरा जूता ! साले गँवार ! सत्ती तो सत्ती हो गई । फिर खून किसका हो गया ?’

‘डिलैवर हरदेव का ।’

‘हरदेव का ?’ दरोगाजी चौंके । हरदेव नामी था । उसे किसने मारा । पूछा : ‘होश में है न ? वरना अभी वो हंटर जड़ूंगा कि हाँ । वहाँ कतल करने वाला बचा कौन है ?’

‘वो लौंडिया तो नहीं मरी सरकार ! एक लंबर की छिनाल है हुजूर ! लोग कहते हैं उसने हरदेव से खाहिस की थी, मगर वो मुकर गया तो चुड़ैल ने उसे गोद-गोद के माड्डाला...’

लड़की का ऐसा वर्णन सुनकर दरोगा जी की आत्मा में भीतर ही भीतर कुछ साँप-सा कुलबुलाया । वैसे बूढ़े-से आदमी थे, अतः बातों के रस

१. Round को रौंद कहते हैं, अतः रौंद देने वाले भी रौंद कहलाते हैं ।

के शौकीन थे। दीवान जी जानते थे। बोले : 'वह लौंडिया भी बला है। अजी सरकार ! क्या पूछते हैं ? एक उसकी यह सत्ती माँ, एक वो लौंडिया। हुजूर सीप से मोती पैदा होता है, मगर कभी किसीने सुना है कि चंदन में से ज़हर भी पैदा हुआ ? हुजूर ! आप तो तफ्तीश करने खुद गये थे। पंडत रामचरन ने क्या कहा था ? कहा था न कि चिता में किसी ने आग नहीं लगाई। खुद-ब-खुद चिता में आग परगट हुई। ऐसा था परताप उस सत्ती का। सरकार तो पक्का इरादा करके गये थे—जो पता चल जाता कि किसीने भी चिता में आग लगाई हो तो उसे ही गिरफ्तार कर लिया जाये। मगर यह तो गैब के काम हैं। होती है कोई आतमा। और सरकार मुझे यहाँ आते वक्त मिला था पंडत सुखदेव का लड़का। बोला, अभी बिंदराबन से आ रहा हूँ। आज करीब दोबजे उसने देखा हुजूर। बूढ़े पंडत गिरिधर खड़े हैं—साफ धोती पहने जमना जी के किनारे और साथ थी जो वो सत्ती हो गई न ? फूलवती, सफ़ेद साड़ी पहने। पंडा ने उनसे पूजा-बूजा करवाई।'

दरोगाजी ने कहा : 'और फूलवती जली कब है यहाँ ?'

'यही सरकार कोई डेढ़ बजे। पहुँच गई आतमाएँ परमधाम में। सच ! अब सरकार मुँह न खुलवायें मेरा। एक वो थी, एक ये लौंडिया है। मनचली हरामज़ादी। बताइये सरकार, पंडत सुखदेव का लड़का, कुछ भला-सा नाम है उसका, कोई बात नहीं फिर याद आ जायेगा, झूठ क्यों बोलने लगा। कहता था दोनों बड़े परसन्न थे।'

दरोगाजी उठकर बढ़े : 'मुकाम पर चलो।'

'हाँ चलिये सरकार।' किशन आगे बढ़ा।

जब दरोगाजी अपने दल के साथ पहुँचे। घर के बाहर भीड़ जमा थी। छतों पर औरतों की धीमी मगर संतुलित चखचख सुनाई दे रही थी।

दरोगाजी के स्वागत में अपने आप गैस का लम्प आ गया था जो शरणार्थी सिंधी अपने खोम्बे के ठेले पर रखकर चलता था। उसके प्रकाश में दरोगाजी ने ऊपर देखा और ऐसा सन्नाटा छा गया जैसे बंदरों से लदे पेड़ के नीचे बघेर आ गया हो।

बूढ़े पटवारी लालाराम ने झुककर सलाम किया और विनीत भाव से खड़े रहे। इस समय वे बदन पर पिछौरा डाले, धोती पहने खड़े थे। सिर पर गांधी टोपी थी। रिटायर हो चुके थे।

‘पंडित जी’ नाम से पुकारे जाने वाले रामचरन घबराये-से थे। उन्होंने दरोगाजी को देखा और सिर झुकाया।

पुजारी गंगासहाय ने पुलिस के दल की ओर देखा और ऐसा महसूस किया जैसे धरम की शक्ति उतर आई हो।

मास्टर जैबिहारी इस समय बुरसट^१ और ढीली मुहरी का पाजामा पहने थे। उनकी मूँछों की बड़ी होशियारी से कतर-व्यौत हुई थी, और लगता था जवानी ने उन्हें यह बहका दिया था कि वे बड़े खूबसूरत थे और मास्टरजी थे कि इस पर यकीन करते थे।

पहले सरवराहकार था अब भले ही कुछ न रहा हो, क्योंकि जिनका दिया औहदा था, वे जमींदार ही खत्म हो चुके थे, मगर बंदीपरसाद की बात में वज्रन था।

इसी तरह दरोगाजी की दृष्टि ने शीघ्र ही देख लिया कि गाँव के इज्जतदार आदमी वहाँ खड़े हुए थे।

दरोगाजी ने अपना भब्वेदार साफ़ा हाथ से एक बार छुम्रा और फिर कातिल के घर के दरवाजे पर ठिठककर मुआयना किया और निहायत संजीदगी से पूछा : ‘हाँ जनाबेमन ! कत्ल हुआ है, यह खबर मुझे मिली, जिसे सुनकर मैं फ़ौरन उठ खड़ा हुआ। यह क्या मामला है और खास गाँव में ?’

‘हुजूर इलाका सरकश तो है ही,’ दीवानजी ने दाद दी, ‘वर्ना तहसील के थाने के रहते हुए यहाँ दूसरा थाना सरकार को क्यों बनाना पड़ा। हुजूर ! गवरमेन्ट ने इसे क़ायम किया था और कांग्रेस ने इसे क़ायम रखा।’

दरोगाजी ने कोई ध्यान नहीं देकर घर में क़दम रखा। दीवानजी ने

कहा : 'यह देखिये हूजूर...' यह घर है उसी पाक देवी का, जिसमें भवानी की आत्मा उतर आई थी ।'

दरोगाजी ने देवत्व का कोई चिह्न नहीं पाया तो नाक-भौं सिकोड़ी ।

'अबे लौंडे आगे चल ।' गैसलंप वाले को एक सिपाही ने डाँटा । लड़का आगे जा खड़ा हुआ ।

देखा ! दीप्त प्रकाश में ।

शव पड़ा था । मुख विकृत हो गया था ।

'यही है हरदेव !' पूछा ।

'हाँ सरकार यही है ।' आवाज़ उठी ।

बैठी थी विद्या ।

'और यह कौन है ?'

'सरकार विद्या है ।'

'किसकी औरत है ?'

'हूजूर बेवा है ।'

'किसकी बेटी है ?'

'गिरिधर पंडित की ।'

और रक्त बह रहा था । दरोगाजी ने गौर से देखा ।

'यह क्रतु इसी लड़की ने किया ?'

'हाँ, सरकार !'

'किसने देखा इसे क्रतु करते ?'

कोई नहीं बोला ।

'बोलते क्यों नहीं ? तुमने देखा पंडित रामचरन ?'

'नहीं सरकार ! हम यहाँ कहाँ थे ?'

'मगर तुमने कहा कि क्रतु इसी ने किया । फिर किस सुवृत पर कहा तुमने ? तुम जानते हो, किसी पर क्रतु का जुर्म लगाना किस दफ़ा में आता है ?'

'दुहाई है सरकार की !' पंडित रामचरन ने पुकार उठाई । 'सब लोग

इसी चुड़ैल का नाम ले रहे थे, मैंने भी कह दिया ।’

दरोगाजी ने कहा : ‘ठीक है । ठीक है । मगर पुलिस अब वह पुलिस नहीं है । तब पुलिस हुकूमते बर्तानिया के राज को कायम रखती थी, मगर अब वह आपकी यानी जनता की सेवा करती है । आपको चाहिये कि पुलिस की मदद करें । क्यों पंडितजी ?’

‘हाँ सरकार !’

‘यह लड़की, जिसने कत्ल किया है, बोलती क्यों नहीं ?’

विद्या देखती रही । बोली नहीं ।

‘सरकार ! इस पर हत्या चढ़ गई है ।’

‘हतिया !’ दीवानजी ने कहा : ‘ठीक कहते हैं पंडितजी ! हतिया होती बड़ी खतरनाक चीज है ।’

दरोगाजी ने आगे बढ़कर अपनी आवाज़ उठाकर पूछा : ‘हम पूछते हैं, यह तूने किया लड़की ?’

सारे समूह में एकदम सन्नाटा छा गया । फिर खुसुर-फुसुर शुरू हुई ।

कोई उत्तर नहीं मिला विद्या की ओर से । दरोगाजी ने भीड़ की ओर भी उठाई । रामचरन ने कहा : ‘अरे चुप रहो, खामोश रहो...’

दरोगाजी का पंडितरूपी प्रताप जब सबको चुपकर चुका तो वे फिर बोले : ‘बोलती नहीं ? एक रहपट में दाँत भड़ जायेंगे सारे, सूअर की बच्ची ! कुतिया ! हरामजादी ! एक आदमी का कत्ल करके बैठी है । औरत है, औरत है तू ?’

मगर विद्या पर जैसे कोई असर नहीं । अब भी स्तब्ध बैठी रही । जैसे उसे पता ही नहीं कि क्या हो रहा था ।

‘औरत है कि डायन !’ रामचरन ने कहा : ‘हज़ूर है तो यह हमारे कुनबे में से, जिसे कहते-कहते मेरी गर्दन शरम से झुकी-झुकी जाती है, मगर मजबूरी है कि भगवान को यह दिन भी दिखाना ही था ।’

दरोगाजी ने परिस्थिति को भाँप लिया तो अपने सिपाहियों से बोले : ‘फकड़ लो इसे, हथकड़ी डाल दो...’

सिपाहियों ने झपटकर विद्या को हथकड़ी-ब्रेडी पहना दी। किंतु उसने फिर भी कुछ नहीं कहा।

‘यह बोलती क्यों नहीं?’ दरोगाजी ने दीवानजी से धीरे से पूछा : ‘कहीं पागल तो नहीं हो गई?’

दीवानजी ने कहा : ‘सरकार ! यह तो बदनाम लड़की है पहले से। तिरिया चलत्तर के कितने पहलू हैं यह कौन बतला सकता है। हुजूर ! इस मुताल्लिक संसकिरत का एक अशलोक भी तो है...’

दारोगाजी ने बात काटकर कहा : ‘क्या मुसीबत खड़ी कर दी है इसने। लाश का मुआयना करवाना होगा ! क्रातिल को हवालात में बंद कर दो ले जाकर।’ फिर मुड़कर भीड़ की ओर मुंह करके कहा : ‘क्या वक्त होगा ? कमबख्त को क्या वक्त सूझा था ! यह कत्ल करने का वक्त था !’

दरोगाजी के इस अच्छे मजाक पर हँसने के लिये गाँव के उन इज्जत-दारों में होड़-सी होने लगी।

‘तो सरकार पुरानी आशनाई को क्या बख्त बे बख्त की पूछ होवै !’ कहकर बूढ़ा पटवारी हँस उठा।

एकदम जैसे एक ज्वार-सा आ गया। हथकड़ियाँ खनखना उठीं। सिपाही पीछे हट गये।

‘खबरदार !’ सहसा विद्या चिल्ला उठी : ‘खून पी जाऊँगी !’

‘दे सूअर की बच्ची में रहपट ! हरामजादी !’ दरोगाजी चिल्लाये।

लोग चिल्लाये : ‘ओ चुप रह हत्यारी !’

‘ओ चुप तो रह डायन !’

‘अरी सरम कर ! तेरी माँ कैसी थी और तू कैसी है।’

‘माँ का नाम न बिगाड़ो इसके संग लेकर, वह कैसी थी कौन नहीं जानता।’

‘वह देवी थी, देवी !’

लेकिन विद्या ने ऐसे सुना जैसे स्टेशन पर खड़ा आदमी, बेमतलब

के किसी शोर को सुनकर भी नहीं सुनता। दरोगा जी के कान में दीवानजी ने धीरे से कुछ कहा जिसे सुनकर उन्होंने सिर हिलाया। ज्योंही विद्या को खींचा वह जोर करने लगी। शोर होने लगा।

‘एक और लगे...’

‘पकड़ लो ...’

‘कहाँ ले जाते हो मुझे, छोड़ दो ...।’

एक भटका, दूसरा भटका।

‘सिंहनी हो गई, सिंहनी हो गई।’

‘अरे कोई बचाओ ... दुहाई गाम की ...।’

‘छोड़ना मत ...।’

‘पकड़ लो इसे, दबा दो ज़मीन पर ...।’

विद्या नीचे गिरा दी गई।

दरोगाजी गरजे : ‘औरत है कि आफ़त।’

‘अरे मैं अबला हूँ ... कोई बचाओ ... हत्यारे मुझे मारे डाल रहे हैं ...।’

‘सीधी-सीधी थाने क्यों नहीं चली चलती ...?’

‘हाय मेरा गाम में कोई नहीं?’

‘दे कसकर दो लात ...।’

भट ! भट !

‘हाय मार डाला रे ... कोई नहीं बचाता ... हाय मेरे राम ... अरे बचाओ ... अरे धरम की कमर टूट गई रे ...’

फिर विद्या चुप हो गई।

‘उठाओ इसे।’

‘चलो ! चलो ! देर मत करो।’

अब लेकिन विद्या स्तब्ध हो गई।

‘उठती है या नहीं?’

विद्या बैठ गई।

‘परमेसरी ! अब तो दया कर !’

‘अरी गाम में किसी को रहने देगी या नहीं ?’

‘हत्या करके दया चाहती है ?’

विद्या चुप ।

दरोगाजी आगे बढ़े । ‘अब ठीक है । आ गई राह पर । भार के आगे बड़े-बड़े सीधे हो जाते हैं । वह तो ज़माना बदल गया है ज़रा, क्या करें ? ले चलो थाने । बदनसिंह ! लाश के पास तुम रहना । सुबह तक ही डाक्टर आ पायेंगे ।’

दरोगाजी चले गये ।

और पीछे-पीछे सिपाही विद्या को पकड़कर ले चले । सारा गाँव देखता रहा । उसकी ओर कोई नहीं था । खून के मुजरिम की ज़मानत का सवाल ही क्या ? और वह भी तब, जब उसके साथ किसी की भी हमदर्दी न हो ।

घर फिर नीरव होने लगा । बदनसिंह कुछ डरा हुआ-सा सरककर घर की पौरी के दरवाज़े पर आ बैठा । भरी बंदूक उसके पास थी ।

भीड़ छूट गई लेकिन सारा गाँव चर्चा करता रहा ।

‘यह हुआ कैसे ?’

‘हरदेव का इससे क्या वैर था ? माँ के पास तो वह आता था ।’

‘सती थी वह !’

‘उसकी ऐसी बेटी ?’

‘कुछ समझ नहीं पड़ता ।’

‘वह तो शहर गया था न ?’

‘आ गया शायद तभी ।’

‘उसने समझाया होगा ।’

‘सो इसने कतल कर दिया ?’

‘अजी इस पर तो पाप की चण्डाली छा रही थी । उसी पर झपटी होगी । उसने कहा होगा अधरम है ।’

‘यह बात तो है, जुआ-वुआ हजार बदफैली में था हरदेव, मगर कभी उसने किसी की बहू-बेटी की तरफ़ ताका हो, इसकी तो किसी ने कभी बात ही नहीं सुनी। किसी के भी घर जाता तो मरदों की हाजिरी में, और उनके सामने ही लौट आता था।’

‘विद्या को उन्होंने बंद कर दिया है।’ किसी ने थाने से आकर खबर दी।

‘बंद न करते तो करते भी क्या?’

‘भगवान जाने अब थाने में उसके साथ क्या-क्या करेंगे?’

सब पर रोमांच-सा छा गया।

‘दरोगाजी तो बुड्ढे हैं।’

‘अरे बुड्ढों की मत कहो, हैं न अपने मुरली मनोहर...’

सब हँसे। मगर हँसी में कोई जान नहीं।

‘सारा गाँव देखता रहेगा क्या यह भी?’

एक कचोट भरी वेदना उठी।

‘क्यों? क्या बात हुई?’

‘हुई तो नहीं। पर हो जाये तो!’

‘लेकिन वह तो खुद खराब ही जो ठहरी।’

‘फिर, फिर खून की भी तो दरकार है?’

‘अब दरकार में क्या जानूँ। मगर कोई नहीं उसका।’

उधर दरोगाजी ने कहा : ‘अबे किशन ! इसने खून किया क्यों ? अदालत में क्या कहा जायेगा आखिर ?’

‘मैं क्या जानूँ हुजूर?’

‘जरा चिकनी-चुपड़ी बनाकर पेट में से उगलवा उसके। जरा हमदर्दी दिखा। कुछ खौफ़ दे।’ दरोगा जी ने बड़ी बुद्धिमत्ता से कहा।

‘सरकार औरत के पेट में कुछ हो तो वह तो उसे आप उगल देती है ! उसके क्या पेट में बात पचती है ? बड़े-बूढ़ों ने कहा ही है...’

‘अबे बूढ़ों की झोलाद ! यह पुलिस की थानेदारी काँटों की सेज से

कम नहीं !'

'कोशिश करता हूँ हुजूर !'

किशन, अंधेड़ नाई है । विद्या के पास जंगले के बाहर जा बैठा ।

सिपाही हट गये ।

'विद्या !'

कोई उत्तर नहीं ।

'मैं हूँ किशन ।'

कोई उत्तर नहीं ।

'अरी बोलेगी नहीं ? देख रही है क्या हो रहा है ? खून हो गया है, पुलिस के हाथों पड़ गई है । अब भी तुझे अकल नहीं आई ?'

कोई उत्तर नहीं ।

'बोल ! क्या कहती है ? कमबख्त कुछ तो सोच !'

'क्या सोचूँ काका ?'

किशन में आशा बँधती आई । बोला : 'अब देख तू कहाँ आ गई है विद्या ! विद्या बिटिया ! हरदेव तो तेरा मामा बनता था न ? माँ भी तो मर गई आज !'

'मेरी अम्मा बुरी नहीं थी काका ! बहुत भली थी । वह भूल गई थी । पर उसने मुझे पाला था । अपना दूध पिलाकर छाती से लगाकर पाला था । मैं उसे बहुत प्यार करती थी । मैं जानती हूँ, वह भी मुझे बहुत...बहुत प्यार करती थी...माँ-बेटी का रिस्ता तो बहुत बड़ा होता है न काका ?'

'अरी तो आखिर हुआ कैसे ?'

'गुस्सा हो जाती थी, भूल जाती थी । पर मैंने कभी उसका बुरा न किया काका । मैं जानती थी वह मेरी मानेगी । चाचा थे न ? कहते थे धीरज बहुत बड़ी चीज है । सब पर मुसीबत आती है और साँच को आँच नहीं आती ।'

'क्या बक रही है तू बिटिया ! अब तो तू कहीं की नहीं रही ? आगे की सोच ।'

विद्या फूट-फूटकर रोने लगी !

‘रोती क्यों है अभागिन ।’

रोदन ।

किशन चुपचाप समय देता रहा ।

‘जो जिसको बचपन से पालता है उसे उस पर प्यार तो होता ही है न काका ?’

फिर रोदन ।

‘अब देख, यहाँ रोने-धोने में तो काम चलेगा नहीं । कतल तो तूने किया ही है ?’

‘किसका ?’

‘हरदेव का ।’

रोदन रुक गया । और किशन ने देखा कि विद्या में एक कठोरता-सी आ गई । उसने अपना सिर ऊपर उठा लिया और दृढ़ता से कहा : ‘हाँ किया है और फिर भी करूँगी ।’

‘लेकिन क्यों ?’

‘इज्जत, चचा कहते थे, स्त्री के लिये सबसे बड़ा धर्म है । उससे ऊपर कुछ नहीं । उसे औरत न खोये तो उसके हुकम से सूरज का निकलना बंद हो जाये । तू जा काका ! तू नहीं समझेगा ।’ किशन चौंक गया । उसने देखा और देखता रह गया ।

विद्या के मुख पर जैसे असीम शक्ति थी । जैसे घास के बीच वह अकेला वृक्ष थी । वह नहीं सोच पाया कि इसे कैसे सिर झुकाऊँ क्योंकि लोक उसे काट देना चाहता था । और तब वह बिल्कुल कुछ न समझा-सा उठकर चला गया । कुछ देर बाद थाने में सन्नाटा छा गया । केवल पहरे वालों के बूटों की खट-खट सुनाई देती रही ।

भोर की चिड़िया ने पहले पेड़ पर अपना प्रभात का स्वागत-गीत गाया और तब धरती पर घास और धूल पर फुदकी और अपनी चौंच किसी कीड़े पर मारकर उसे जल्दी-जल्दी रौंथ-रौंथकर गले के नीचे उतारने

लगी। पिड़कुलिया जागी तो उसने बेर के पेड़ को छोड़ा और ऊपर देखा जहाँ टोल के टोल अनेक पक्षी उड़ें चले जा रहे थे। सुबह की हल्की-हल्की उजियाली अब गगन की काली चादर हट जाने पर भीतर से कुछ नीली और कुछ नारंगी-सी निकल आई थी। फर-फर करके उड़ते तोतों ने आकाश में ढेर लगाई और मरघट में बैठा गिद्ध चौकन्ता होकर आकाश में उड़ने के लिये अपने खुरदरे काले पंख बँडे-बँडे तोलने लगा, जिसके कारण कुत्ते ने कुछ पीछे हटकर एक कनौती बदली और फिर तीन प्यारी-प्यारी डंड लगाई।

गायों के गले में बंधी घंटियाँ बजने लगीं और नीले और बेहरे-से टीले, जो पहाड़ कहलाते थे, उनकी ओर चल दीं। एक बार मुड़कर उन लोहे के लंबे सीखचों की ओर देखा जो रेल की पटरियों के दोनों ओर गड़े थे और फिर खुरों से धूल को और ज्यादा पीसती हुई वे आगे चल पड़ीं। पीछे चलते ग्वारिया ने तान छोड़ी और फिर भटकती गायों के पीछे भाग चला। छोंकरे की छाया में उगी झाड़ियों ने कुछ भी नहीं कहा।

किसानों ने अपने खेतों की ओर कदम बढ़ाये। हजार दास्तानों वाली ज़िंदगी की सबसे बड़ी जुस्तजू गाँव में खेत है, जहाँ गुबराँध नहीं और जहाँ दूर तक आकाश फैलता है, धरती उसमें लीन हो जाती है। मगर किसान को दुनिया की न्यामत उसकी गोई की जोड़ी है, जिसमें वह साकार सृष्टि का आदिम और शाश्वत स्वरूप देखता है।

मोटर लारी बंद हो गई। अब सरकारी बसें चलेंगी कल से। लेकिन जवान पनिहारिनों के जीवन में इससे कोई परिवर्तन नहीं आया। उनकी रस्सियाँ पत्थरों को धीरे-धीरे काटती हैं, धोतियाँ फरफराती हैं, घघरियाँ चक्कर खाती हैं। घड़े भरते हैं, मगर बातों से कूँ कभी नहीं भरते और पनघट पर नहाता कोई बामन जब पतली चुटिया निचोड़ता है तब उसमें से गंगा नहीं निकलती, अवश्य ही उसके मुख से कोई श्लोक अपने अशुद्ध-प्रायः उच्चारण के साथ निकलता है—ग्रोम भूरभुवैस्वैहै...

खाती पहिये उठाता है और फिर कील ठोकने लगता है...गाँव की

ज़िंदगी में बहुत काफी फुर्सत है, मगर फुर्सत किसीको नहीं है... क्योंकि यहाँ काम होते हुए भी वह एक नैरंतर्य है, जिसमें कोई वैविध्य नहीं है... सब कुछ चलता है, जैसे चलने के लिये...

थाने के बाहर सिपाही अब इकट्ठे हो रहे हैं। उनके चेहरे इस वक्त धुले-पुंछे हैं।

भीतर मुंशी जी की मूँछें अब आँखों की सरपट दौड़ के नीचे कुछ-कुछ हिल उठती हैं। दरोगाजी ने पेट्टी बाँधी और बाहर आये। दूध का गिलास चढ़ाया। हो चले बूढ़े, मगर आँखों में अभी ताकत के रेशे झलक मारते हैं। परिवार के लिये दूसरों से रुपये जरूर लेते हैं, मगर वैसे उनका 'चलन' बड़ा दुरुस्त है।

विद्या के पास कोई नहीं।

बाहर खड़खड़ हुई। शायद सो गई थी वह। दुःख हो, या सुख, शरीर का भी अपना धर्म होता है। वह अपने आप सुला देता है, जगा देता है। नींद आती है आगे जागने के लिये, जागना पड़ता है आखिर में थककर सो जाने के लिये। इस बीच में जो कुछ हो जाता है उसे ज़िंदगी कहा जाता है।

वह अकेली है। निस्तहाय। उसका साथी एक चहा था जो कभी-कभी अपने बिल में से झाँककर देख लेता था। हाथ उठाती है तो हथ-कड़ियाँ बज उठती हैं।

कानिस्टिबिल जुम्हारसिंह की औरत आई और उसने उसे बाहर निकाला। जब वह उसे सुबह की जरूरियात से लौटाकर लाई तब दरवाजा फिर बन्द हो गया। दरोगाजी की यह शराफत गाँव भर में फैल गई।

दरोगाजी ने हुक्का सामने से हटा दिया और उठ खड़े हुए। सिर पर भब्रेदार साफा रखा और दिन का प्रारंभ करने की चिंता में पड़े ही थे कि उनका ध्यान टूट गया।

बाहर से आवाजें आने लगीं।

‘ओहो ! आप फिर तशरीफ ले आये ?’

‘आपकी कशिश ही ऐसी है।’

हास्य ।

‘आइये तशरीफ़ रखिये । अरे भई सिगरेट लाना ।’

‘रहने दीजिये, रहने दीजिये ।’

‘अब थाने की ज्यादा कद्रदानियाँ तो क्या मंजूर करेंगे आप ?’

‘मुबारक हों आपको, मुबारक हों आपको ।’

फिर हास्य ।

‘फर्माइये, कैसे तकलीफ़ की ?’

‘ख़बरें ! हमें कौन बुलाता है और ? ख़बरें !’

‘तो क्या आप तक बात जा पहुँची ?’

‘जी हाँ जनाब ! गिद्ध पहुँचाते हैं हमें ख़बर ।’

‘सारे के सारे पाल रखे हैं जनाब ने । मगर अपने यहाँ आपके मतलब की लाश ही कहाँ ?’

‘अजी आपके यहाँ सतजुग ठहरा । सती का किस्सा तो बताइये ।’

‘क्या कहा ? सती का किस्सा !’

‘शहर तक दूध वाले की जुबानी बात पहुँच चुकी है साहब । औरतों में तो बहुत बड़ी सनसनी है ।’

‘उनमें हो न हो, आपको अपने अख़बार को दुलकी से सरपट दौड़ाना है ।’

अख़बारनवीस मुस्कराये और पाजामे को घुटने पर कुछ उठाया कि कहीं कुब्ब-सा न निकल आये, क्योंकि कल फिर पहनना था । बोले : ‘बहुत अच्छे ! बहुत अच्छे ! गोया हम भूठ फैलाते हैं । अजी जनाब ! इन्सान को दुनिया के इन्सान से मिलाने वाले कौन ? अख़बार ! यह कौन दिखाता है कि दुनिया में क्या हो रहा है ? अख़बार ! हम आपके सेवक ! जनता को जगाने वाले । संस्कृति का झण्डा उठाने वाले कौन ? अख़बार !’

‘तो साहब, सुन लीजिये । इस गाँव की संसकिरती की नई ख़बर ! रात को यहाँ एक क़त्ल भी हुआ है ।’

‘जी ! क्या फरमाया ? क़त्ल !’

‘जी हाँ, जिस गाँव में सती हुई है एक औरत, वहीं एक और औरत ने क़त्ल भी किया है।’

कुछ भराई-सी आवाज़ में वकील साहब ने कहा : ‘३०२ !’

अख़बारनवीस साहब ने मुड़कर देखा।

‘जी हाँ ! खून !’ दरोगा ने कहा : ‘दराँत जानते हैं न ? आप पत्तर-कार ठहरे, ज़रूर वाकफ़ियत रखते होंगे।’

‘तो दराँत से क्या हुआ ?’

‘खून।’ दरोगा जी ने कहा : ‘लड़की ने इतने हाथ मारे कि हरदेव ड्राइवर भगवान या शैतान के प्यारे हो गये।’

‘तो ज़रूर लड़की बेकुसूर होगी।’ पत्रकार महोदय ने कहा : ‘ड्राइवर ने ज़रूर उसकी इज़ज़त पर हमला किया होगा और लाचार होकर लड़की को अपनी रक्षा के लिए दराँत उठाना पड़ा होगा। हो सकता है, उसने सिर्फ़ डराने की खातिर ऐसा किया हो, मगर चोट करारी बैठ गई हो ! औरत के लिए इज़ज़त से बढ़कर इस देश में और कुछ माना ही नहीं जाता।’

‘अब ये तो आपके साथ वकील साहब बैठे हैं, वे ही बतायेंगे।’ दरोगाजी ने कहा।

‘तजुर्बा यह बताता है कि’ वकील साहब ने सोचते हुए कहा : ‘कई वजूहात हो सकती हैं।’ फिर अंगरेज़ी में कहा—‘केस पूरा सुने बिना कैसे कुछ कह दिया जाये। पत्रकार तो भावुक हो सकते हैं, वकील कैसे हो सकता है। आप तो बाद में भूल-सुधार छापकर बरी हो गये, मगर वकील की भूल का सुधार करता है उसका मुवक्किल जेल में बन्द होकर ! क्यों दरोगाजी ?’

फिर एक हास्य।

‘तो ज़रा हमें उससे मिलाइये तो सही !’ पत्रकार महोदय ने पाजामे को घुटनों पर से ज़रा चुटकी से ढीला करते हुए कहा।

वकील साहब ने बुशशर्ट को ज़रा झाड़ा और अपनी जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाया। दरोगाजी ने देखा और कहा : ‘अरे अभी तक

सिगरेट नहीं लाये', फिर जैसे याद आ गया मुड़कर पत्रकार से कहा : 'हाँ-हाँ, जरूर। मिल लीजिये। शायद आपको राज का कुछ पता लग सके। अभी तक उसने कुछ बताया नहीं। मैंने इन्तदायी रिपोर्ट अभी रोक रखी है। साहब ! लाश पड़ी है। दरांत है। आंगन में लहू है। लड़की है वहीं पर। और सबूत है सारा गाँव। लेकिन अदालत में हमें जबरन गवाह लाने पड़ेंगे, लोग कुछ दिलचस्पी ही नहीं लेते। आप तो जानते ही हैं।'।

पत्रकार ने कहा : 'प्रजातंत्र है। धीरे-धीरे सब हो जायेगा। चलिये ! देखें तो कैसी लड़की है।'।

कोठरी में विद्या चुप बैठी थी।

दरोगाजी ने कहा : 'कुसियाँ डाल दो यहाँ।'।

वकील साहब और पत्रकार महोदय बैठ गये।

'आप दरोगाजी ?'

'नहीं, नहीं, आपही बातें करिये। शायद आपको यह वजह बता दे।'। और फिर उन्होंने मुड़कर विद्या से कहा : 'देख ! अब भी अपनी बात समझा दे। आखिर तूने कत्ल किया तो क्यों ? मैं तो जा रहा हूँ। तेरे सामने यह वकील साहब हैं, यह अखबारनवीस हैं। जानती है अखबार-नवीस कौन होते हैं ? जो अखबार निकालते हैं। इनके हाथ में बड़ी ताकत होती है।'। फिर मुड़कर कहा : 'आपको यह जानकर बेहद ताज्जुब होगा कि यह उसी औरत की लड़की है जो कल सती हुई है।'।

अखबारनवीस के मुँह से अचरज की हूह निकल गई। वकील साहब ने बड़े गांभीर्य से सिर हिलाया। तब अखबारनवीस ने दरोगाजी से कहा : 'अच्छा, अब आप हमें बातें कर लेने दीजिये।'।

'करिये ! शायद आपको बता दे। अगर इसने अपनी इज्जत के लिये कत्ल भी किया है, तो भी मुझे इससे हमदर्दी है साहेब।'।

'जो औरत सती हो सकती है उसका कितना बड़ा कलेजा होगा ! उसकी लड़की अगर इज्जत के लिये ऐसा करे तो क्या ताज्जुब ?'

दरोगाजी ने अंगरेजी में कहा : 'बट द केस इज रैवर्स ! शी इज नोन टु बी ए करप्ट गर्ल ।'^१

'इसका नाम विद्या है।' दरोगाजी ने रुककर कहा और चले गये। उनकी बात ने पत्रकार को उलझन में डाल दिया और वकील साहब के चेहरे पर से हमदर्दी मिट गई।

'तुमने क़त्ल किया है?' पत्रकार ने पूछा।

'हाँ' विद्या ने उत्तर दिया।

उस कठोर स्वीकृति ने पत्रकार को सहसा ही अचकचा दिया। इसी समय किशन आकर वही धरती पर उकड़ूँ बैठ गया। शायद वह दरोगाजी का भेजा हुआ था।

वकील साहब ने अपनी उँगलियाँ एक दूसरी में फँसाते हुए कहा : 'तुम बता सकती हो, यह सब क्या भगड़ा है?'

उस स्वर में मानवीय सहृदयता के ठीक कुछ ऐसा उल्टापन था कि विद्या नहीं बोली। उसे लगा उसके सामने एक ऐसा आदमी था जो सिर्फ़ धन की ओर हो सकता था, क्योंकि बचपन से उसने चाचा से यही सुना था कि वकील लूटने वाला होता है। और बचपन में जो जड़ें जम जाती हैं वह बहुत ही गहरी उतर जाती हैं।

'हम तुम्हें इस मुसीबत से बचायेंगे।' वकील साहब ने फिर दिलासा दिया।

विद्या सहसा हँसी।

पत्रकार महोदय चौंक उठे !

विद्या ने कहा : 'वकील सा'ब ! दादा के पास पैसा नहीं रहा था। अम्मा के कुछ गहने ज़रूर होंगे। पर घर पर ही होंगे। मेरे पास है ही क्या जो मैं आपको दूँगी। मैं तो विधवा हूँ। बदनाम, पापिन, कुलटा। और मेरे हाथ से खून हुआ है। खूनी तो फाँसी पर चढ़ता है न ? मैं भी फाँसी

१. लेकिन मामला उल्टा है ; इसे तो दुश्चरित्र माना जाता है।

पर चढ़ूंगी । खून तो हो ही गया ।’

‘तूने किया ?’ वकील साहब अप्रतिभ-से हो गये थे । मुड़कर पत्रकार से कहा अंगरेजी में—‘ऑब्सटिनेट !’^१

‘किसने किया ?’ पत्रकार महोदय ने गहराई और मनोवैज्ञानिक पक्ष को पकड़ते हुए कहा । उनकी समझ में वे अधिक मानवीय थे ।

‘मैंने !’ विद्या ने उत्तर दिया । न जाने क्यों उसके नयनों में पानी भर आया, जिसे उसने पोंछ लिया । पत्रकार महोदय के मन में कुछ करुणा-सी हो आई । कविता भी करते थे थोड़ी-थोड़ी । स्नेह से बोले : ‘क्यों ? कौन-सी ऐसी मजबूरी आ गई थी कि तुम्हें उसे जान से मारना पड़ा ? आदमी की जान तो बहुत बड़ी चीज़ मानी जाती है न ?’

‘उसने मेरी इज्जत पर डाका डालना चाहा था बाबूजी !’ विद्या ने उत्तर दिया ।

‘डाला तो नहीं ?’

‘मैंने उसे ख़तम कर दिया ।’

‘कौन था वह तुम्हारा ?’ पत्रकार ने पूछा : ‘तुम्हारी उससे पहले से जान-पहचान थी ? पहले भी उसने तुम्हें कभी छेड़ा होगा ? कोई गाँव में तुम्हारा गवाह है, जो कह सके कि तुम निर्दोष हो ?’

‘कोई नहीं !’

‘कोई भी नहीं ?’

‘मेरी तरफ कौन बोलेगा ? मैं तो पापिन कहाती हूँ न !’

पत्रकार का मन कुछ पसीजा । वकील साहब को कुछ ज़ोरदार बात नहीं लगी ।

‘अरी विद्या, सोच के बोल ! वह तो तेरे घर आता-जाता था !’ किशन ने टोका : ‘मैंने खुद देखा है वह तेरे आँगन में बैठा ब्यालू कर रहा था और तू ही रोटी परोस रही थी । कह दे ! मैं भूठ कहता हूँ । ऐसे आदमी के

ऊपर तेरा हाथ उठा !'

'हाँ, वह मेरी माँ के गाँव का था !' विद्या ने उत्तर दिया ।

'तू उसे मामा नहीं कहती थी ?'

'कहती थी ।'

वकील साहब ने बड़ी गंभीरता से सिर हिलाया ।

'फिर ?' किशन ने कहा : 'अभी तो ऐसे कह रही थी जैसे अचानक ही तेरे घर आ गया वह । इत्ते बड़े-बड़े लोग तुझे बचाने को बोल रहे हैं, मगर तेरे तो सिर हत्या सवार है । तुझे तो बोलते अब झिझक होती है ।' किशन ने झुंझलाकर जोर से सिर को झटका दिया और कहा : 'तू सुसराल में थी, तब भी वह तेरे घर आता था । तेरी माँ से मिलने आता था । तेरे दादा के पास भी उठता-बैठता था । आप जानते होंगे हज़ूर वकील सा'ब ।'

'हाँ, हाँ, मैं जानता हूँ उसे,' वकील साहब ने कहा : 'उसकी गाड़ी में कई बार बैठा हूँ । यही तो मुझे ताज्जुब होता है । है इस मामले में कोई गहरा राज जो यह लड़की बतलाती नहीं । तजुबों से कहता हूँ, पहले भी उसने कोई छेड़ा-छाड़ी ज़रूर की होगी । इसकी माँ...'

'अजी वकील सा'ब ! वह तो कल ही अपने पति के साथ जिंदा जली है । सती हुई है । हिंदुस्तान की बेनज़ीर मिसाल !' पत्रकार ने हठात् कहा—'है कहीं संसार में ऐसा देश ? स्त्री किस ऊँचाई पर पहुँच जाती है यहाँ ! तब ! जब कि वह कोई खास पढ़ी-लिखी भी नहीं होती ! कम से कम निलनिसी बोनम^१ के नाते अब उसके बारे में तो हमें कुछ ऐसी-वैसी बात सोचनी भी नहीं चाहिये ।'

वकील साहब ने एक बार घड़ी की ओर देखा और कहा : 'अरे काफ़ी टाइम हो गया । यह तो पुलिस की केस है । मैं तो अब लौटता हूँ । हाँ और फिर आप अभी तो शायद रुकेंगे ?'

१. मृत की कोई बुराई न करके अच्छी बात ही कही जाये ।

वकील साहब मानो अब इसपर अधिक बहस नहीं करना चाहते थे। वकील और पत्रकार में बहुत बड़ा भेद होता है। वकील के गले से आवाज़ तब निकलती है जब उसे पैसे मिल जाते हैं। लेकिन पत्रकार को तब पैसे मिलते हैं जब उसकी आवाज़ निकलने लगती है। वकील होते हैं बँगले के कमरे में भाड़ू लगाने वाले नाँकर, और पत्रकार होते हैं बँगले के अहाते में खुले में भाड़ू लगाने वाले मेहतर; कभी आँधी की धूल को रोते हैं, कभी पतझर को कि बहुत पत्ते भाड़ने पड़ते हैं।

विद्या चुप हो गई थी।

वे दोनों बाहर आ गये। उनकी कुर्सियाँ भी उठा लाई गई। किशन भी उठ आया। विद्या फिर अकेली रह गई। और उसे लगा कि यह सन्नाटा उस बातचीत से कहीं अच्छा था।

धीरे से वकील साहब भीतर लौट आये। उन्होंने कहा : 'लड़की ! मुझे लगता है तेरा इस मामले में कोई कसूर नहीं है। तू जरूर कोई बहुत बड़ी बात छिपा रही है। देख, जान है तो जहान है। मुझे साफ़-साफ़ बता दे। क्या उसका तेरी माँ से कोई संबंध था ?'

विद्या नहीं बोली।

वकील ने फिर कहा : 'सती, सती थी। सब कहते हैं, लेकिन मैंने बहुत दुनिया देखी है। मुझे बता दे, मैं तुझे बचा लूँगा।'

विद्या ने एक बार अपनी आँखें उठाईं। वकील साहब की आँखों में एक कुटिलता थी। विद्या ने देखा और फिर चुप हो गई।

वकील साहब ने स्वर धीमा करके कहा : 'बोल ! क्या सचमुच तेरी माँ ऐसी सतवन्ती थी।'

'वह मेरी माँ थी ! माँ तो बहुत अच्छी होती है बाबूजी ! उसने मुझे पाला था न ?'

'अरी बोलती क्यों नहीं ?' वकील साहब ने पूछा : 'मैंने जो पूछा है, उसका जवाब क्यों नहीं देती ?'

'मर जाऊँगी बाबूजी ! जीकर भी क्या करूँगी। विधवा हूँ मैं तो।

औरत तो विधवा हुई मरी के ही समान है। माँ तो सुहागिन थी। सुहाग गया तो आप भी चली गई। वह मेरी अम्मा थी। मैं क्या उसकी बुराई करूँगी? वह तो सदा मुझे प्यार करती थी। मैं जानती हूँ, उसका मन मेरे लिये सबकुछ हार गया था आखिर में।’

‘डाक्टर सा’ब आ गये।’ बाहर आवाज़ सुनाई दी। वकील साहब चले गये।

विद्या रोने लगी।

बाहर वकील साहब को देखा तो डाक्टर साहब ने कहा : ‘एक ज़रूरी केस वहाँ भी अटका हुआ है, लाठी चल गई है। इधर यहाँ की खबर पहुँची। जल्दी ही लौट जाना है। मैं लाश देख आया हूँ।’

वकील साहब बैठ गये। पत्रकार ने कहा : ‘तो डाक्टर साहब ! आपकी क्या राय है?’

‘दराँत से क़त्ल किया गया है। इसमें और दो रायें क्या हो सकती हैं। वैसे आप जो चाहें छाप दें। कौन रोकता है। अभी आपने छाप ही है कि हमारे अस्पताल में दवाइयाँ बेची जाती हैं।’

‘ओह हो!’ पत्रकार ने कहा : ‘यों नाराज हैं। अरे साहब, हमने छाप ही है—गाँव वाले ऐसा कहते हैं ! आपने पढ़ा नहीं ग़ौर से !’

‘इस गाँव में दराँत का इस्तेमाल’—डॉक्टर सा’ब ने मामले को टालते हुए कहा : ‘खूब होता है।’

दरोगाजी ने ग़ौर से सुना और कहा : ‘जी ! आपने क्या फ़र्माया ! आपका मतलब है, यहाँ कोई क़त्ल और भी हो चुका है?’

उन्होंने आश्चर्य से दीवानजी की ओर देखा।

‘जी हाँ।’ डाक्टर साहब ने याददाश्त पर जोर देते हुए कहा : ‘कुछ दिन हुए कि मैंने एक लड़के का ज़रूम ठीक किया था।’

‘कैसा ज़रूम !’

‘अजी दराँत की चोट थी।’

‘कहाँ?’

‘कंधे पर ।’

दीवानजी ने भुककर सुना ।

दरोगाजी फड़के । और बोले : ‘आपने हमें ख़बर नहीं दी डॉक्टर साहब !’

‘लीजिये ।’ डॉक्टर ने कहा : ‘गोया मैं यह भी करता रहूँ !’

‘अजी डॉक्टर साहब ! डॉक्टर तो डाकुओं को पकड़वा देते हैं, जब डाकू उनसे गोली लग जाने पर निकलवाने जाते हैं । ख़ैर ! छोड़िये भी । हाँ, कौन था वह ? आपको कुछ याद आता है ?’

डॉक्टर अचकचा गये । बोले : ‘उसने मुझे कुछ ऐसी वजह ज़रूर बताई होगी कि मेरा शक उधर न गया होगा । वरना आप तो जानते ही हैं मुझे ! कुछ भरोसे...’ डॉक्टर ने फिर याददास्त पर जोर देते हुए कहा : ‘हाँ, हाँ, रामभरोसे-सा था उसका नाम ! है कोई इस गाँव में रामभरोसे !’

‘गोरा-गोरा सा !’ दीवानजी ने कहा : ‘कुछ हसीन-सा लौंडा है वह !’

‘रामभरोसे...!’ किशन ने सुना और कहा : ‘वह तो हरदेव का किली-नर है । उसी के गाँव का था । बाप मानकर पैर छूता था वह हरदेव के ! उसी का तो सारा भगड़ा है हुजूर ! उसी के पीछे यह बदनाम हुई ! अरे वह तो इसका यार था...खेत में बैठा इसे लिये वह रबड़ी खिला रहा था, और यह रॉड लपलप करके खाये जा रही थी बेसरम । इसके बाप ने पकड़ा जाकर इसे । गाँव भर जानता है यह बात !’

दरोगाजी को जैसे सोने से लदे हुए डूबे जहाज़ का पता लग गया । चिल्लाये—‘पकड़ लाओ उसे...’

सिपाही दौड़ गये ।

वकील साहब ने फिर सिगरेट जलाई । दरोगा जी ने कहा : ‘अरे कोई सिगरेट तो लाओ वकील साहब के लिये...’

‘बस आपही की है ।’ वकील साहब ने झेंपकर कहा ।

‘यहाँ तो पिलानी ही चाहिये आपको ।’ दरोगाजी ने कहा : ‘हाँ, भाई कोई ज़रा लाना...’

मनसा की पान की दूकान पर बैठे रामभरोसे को जाकर टोका जुझहारसिंह ने। फ़ौरन गाँव के छैलों में सनसनी-सी फैल गई। पिछले पख-वारे एक नाइन मर गई थी। इस समय उसकी शराफ़त का गाँव के कोई तेरह 'नामवर शरीफ़' बयान कर रहे थे कि वह 'बड़ी शरीफ़ थी, किसी का दुख उससे न देखा गया', इत्यादि और जब बात में रस पैदा होने ही वाला था कि जुझहारसिंह ने पहले तो पानवाले से मुफ़्त की बीड़ी लेकर मुलगाई और फिर बहुत आहिस्ता से एक बहुत बड़ा पत्थर-सा लुढ़का दिया : 'चल भाई रामभरोसे...'

रामभरोसे ने गमछा कंधे पर टटोला, बीड़ी में दो फूँकें मारीं और कुछ आश्चर्य से कहा : 'क्या हुआ जमादार सा'ब !'

'थाने चल !'

'म !'

कहते हैं जैसे यमदूत को यमलोक ही अपना घर मालूम देता है, मगर आदमी उससे डरता है, वही हाल रामभरोसे का हुआ। हालाँकि जुझहारसिंह अपनी राय में निहायत मामूली-सी बात कह रहा था। उसने मुस्कराकर गर्व से देखा और उसके कंधे पर धप मारकर कहा : 'अबे चल भी ! डरता क्यों है ?'

'उफ़ !' कंधे पर हाथ पड़ते ही रामभरोसे ने कहा, और कंधे पर से हाथ हटाकर दूसरे हाथ से सहलाया।

'तेरे कंधे पर क्या है ?'

'चोट लग गई थी जमादार सा'ब ।'

'तो चल बेटा थाने !'

रामभरोसे काँपने लगा, पर उसने अपने को सँभाल लिया और पूछा : 'क्यों जमादार सा'ब ! मैंने क्या किया है ?'

'मुझे क्या ख़बर ! पर चोट कैसे लगी तेरे ?'

रामभरोसे बगलें भाँकने लगा।

जुझहारसिंह ने कहा : 'अरे भगवान की लीला कौन जानता है। वाह-

वाह ! अरे कैसी की बेटी कैसी निकली !'

'कौन जमादार सा'ब !'

'तू थाने तां चल !'

'किसी ने कुछ कहा है क्या मेरे बारे में ? विद्या है न वहाँ ?'
रामभरोसे ने संदेह से कहा ।

'बड़ी हरामजादी है वह,' जुझहारसिंह ने कहा : 'वह कहेगी कुछ ? मजाल है जो उसने कुछ भी कहा हो ! कहने वाला तो और है !'

रामभरोसे की जान में जान आई । अलग ले जा के एक पया दे-के पूछा : 'बात क्या है जमादार !'

रुपया पाते ही बोले जुझहारसिंह : 'अबे यार ! कुछ नहीं । डाक्टर सनक गया है ज़रा ।'

भीड़ पीछे, आगे रामभरोसे ।

रास्ते में बातें, तरह-तरह की ।

जमादार ने मुड़कर देखा । वह रामभरोसे की शक्ति थी । गाँव के छैले, गुण्डे ! सिरों में तेल चुचा रहा है, गलों में तावीज बँधे हैं । कंधों पर गमछे पड़े हैं । किसी-किसी की तो आँख में भी काजर है । जमादार प्रायः सबको जानते हैं क्योंकि इन रोज़ के दोस्तों से अमूमन थाने में सरकारी बर्ताव से पेश आने की नौबत आती ही रहती है ।

दरोगाजी ने पूछा : 'क्यों ! आ गया ?'

रामभरोसे के आगे बढ़कर जुझहारसिंह ने सलाम करके कहा : 'हाज़िर है हज़ूर !'

'रामभरोसे !'

'हाँ हज़ूर !' रामभरोसे ने सलाम किया, फिर कुछ दबा-सा खड़ा रहा, उसके दबने में एक उद्वण्डता भी थी जैसे क्या है, ज्यादा से ज्यादा जेल में बंद करवा देगा; तो भी क्या डर है, यहाँ न खाई, वहाँ खा ली ।

दरोगाजी ने गंभीरता से कहा : 'गाँव में खून हो गया है, जानता है ! यह क्या मामला है ?'

‘सरकार ! खून के मामले का ताल्लुक पुलिस से ठहरा, मैं अनजान आदमी क्या जानूँ ?’

‘तू तो बड़ा भोला-भाला आदमी है ?’

‘अब हजूर क्या कहूँ, आप तो खुद वाकफ हैं ।’ रामभरोसे ने बहुत ही विनीत स्वर से कहा ।

‘तेरे भी दराँत लगा था ?’ दरोगाजी ने बिना उसे सोचने का मौका दिये हठात् पूछा । एकदम हवा में एक सन्नाटा खिंच गया । डॉक्टर के माथे पर फिर बल पड़ गये । रामभरोसे के साथी एक दूसरे का मुँह देखने लगे ।

‘नहीं, हजूर ! कब ? कैसे ? कहाँ ?’ रामभरोसे ने ऐसे पूछा जैसे वह इस प्रश्न का कोई तारतम्य ही नहीं समझा था ।

‘बड़ा घिसा हुआ है तू !’ दरोगाजी झल्ला उठे और डॉक्टर की ओर देखा ।

डाक्टर साहब ने कहा : ‘भूठ बोलता है बिल्कुल ।’

रामभरोसे ने कहा : ‘हैं-हैं, डाक्टर सा’ब ! हजूर दरोगाजी के लिए ऐसे अलफाज !!’

एक ठहाका लगा ।

डाक्टर के नथुने भोंप और क्रोध से फड़क उठे । बोले : ‘तेरे दराँत नहीं लगा था ?’

‘नहीं हजूर !’

‘मैंने खुद तेरा इलाज किया है । अब ज़रूम पुर गया है तो बदल रहा है ।’

रामभरोसे ने धीरे से नहीं जोर से ही कहा : ‘हुजूर को मैंने इस जखम के इलाज के लिये पचास रुपये दिये थे । अब जखम पुरेगा नहीं तो क्या करेगा ? और सरकार पुरेगा तो बदलेगा कैसे नहीं । मैं तो जमाने में कहता हूँ, कि डाक्टर सा’ब की दवा में उतनी तासीर नहीं, जितना जस उनके हाथ में है ।’

सबने एक दूसरे की ओर देखा । रामभरोसे ने कहा : ‘देख लो वकील

सा'ब ! आप मेरे मालिक ठहरे ! जखम पुरेगा तो बदलेगा नहीं ?'

वकील साहब मुस्करा दिये और पत्रकार की ओर देखा जिसको मनो-विनोद का साधन मिल गया था ।

दरोगाजी चिल्लाये : 'साले धोखे में न रहियो ! खाल खिचवा लूंगा ।'

मगर रामभरोसे आज सालिगराम* हो रहा था । उसने थाने की दीवाल पर लगी महात्मा गांधी की तस्वीर के नीचे लिखे वाक्य जोर-जोर से पढ़ना शुरू किया : 'मीठे वचन बोलिये । आप जनता के सेवक हैं ।'

दूसरा ठहाका लगा ।

'बताता हूँ हजूर,' रामभरोसे ने फिर कहा : 'मेरे चोट लग गई थी । आपने देखा होगा, रेल की पटरी के किनारे लोहे गड़े हैं । मैं उधर से निकल रहा था, सोचा कौन चक्कर लगाकर जाये । उस पर चढ़ा तो पाँव फिसल गया और कोना यहाँ कंधे पर गपक गया । डाक्टर सा'ब के पास गया । फीस दी । इलाज करा लिया । बस इतनी-सी बात है हजूर । वैसे डाक्टर सा'ब मालिक हैं, दरांत कह दें, करौत (लकड़ी चीरने का आरा) कह दें ।'

'तुम्हे बुलाती थी ?' दीवानजी ने बीच में से काटा ।

'मुझे बुलाती थी ! यह किसने कहा ? कौन बुलाती थी ? अजी हजूर ! यही तो इस ज़िदगी का सिकवा है कि किसी ने, कसम नीली छतरी वाले की, आज तक नहीं बुलाया ; गोया हम उनमें हैं ही नहीं, जो बुलाये जाते हैं ! ऐसे-ऐसे हसीन मौजूद हैं जहाँ कि उल्टे तवे सरमा जायें, उनके रहते हमें कौन पूछे ? भगवान् ने कलजुग में भैंस को नखरे करने का बरदान दिया और गैया से छीन लिया ।'

डाक्टर ने अंगरेजी में कहा : 'हार्ड बॉइल्ड ऐग !' (अर्थात् बड़ी घिसी हुई रकम है ।)

*काले पत्थर की चिकनी बटिया, जिसे शालिग्राम कहते हैं ; अर्थात् भगवान की मूर्ति की भाँति पूज्य मानते हैं ।

‘और !’ दरोगाजी ने कहा : ‘तू समझता है रामभरोसे, कि तेरा पाला किससे पड़ा है ?’

‘भगवान् डरता है हजूर ! मैं क्या चीज हूँ !’

‘अच्छा, विद्या से तेरा ताल्लुक है ?’

‘है नहीं हजूर ! हो जाता तो दोनों लोक तर जाते ।’

‘उसने तुमसे क्या कहा ?’

‘उसने मुझसे कहा होता तो सरकार मैं जान दे देता ।’

‘दे देता !’

‘सौ बार देता हजूर !’ रामभरोसे ने हाथ फैलाकर कहा : ‘पर क्या करूँ सरकार ! उसने कहा ही नहीं ।’

‘और तूने भी उससे कुछ नहीं कहा ?’

‘मैंने उससे क्या नहीं कहा सरकार ? मगर बो तो मुझको गुण्डा समझती है । मैं डर गया हजूर ! वह बड़ी कलेजे की औरत है जो पत बचाने को सब कुछ कर सकती है ।’

‘तुझे कैसे मालूम ?’

‘जिसे यकीन न हो, उसे छेड़ के देख ले ।’

‘तब यह बात दुरुस्त है,’ दरोगाजी ने कहा : ‘कि यह उसे छेड़ चुका है, और जिसके हाथ ने दराँत लेकर अब क़त्ल किया है, उसके हाथ ने पहले इस पर भी दराँत चलाया है ।’

‘हजूर मैंने इंकार कब किया और गुस्से से उसने मुझे डाँटा जरूर, मगर उसके फूल से हाथ ने मुझ पर दराँत नहीं चलाया । भूठ क्यों बोलूँ ? भूठ का फल पाप होता । ढाई आखर सत्य का पढ़ै सो पण्डित होय ! बस फकत ।’

‘फिर मामले को तूने छिपाया क्यों ?’ दरोगाजी ने टोका ।

‘हजूर के आगे कहता हूँ तो दिल्ली की सरकार के आगे तक कहता हूँ । छिपाता क्या हूँ ? बफर कर टूटी मुझ पर । मैंने क्या कहा था ? बस इतना ही—तेरा क्या लेते हैं ! कि लेने के देने पड़ गये । सच कहता हूँ, भूठ क्यों

बोलूँ ? हुजूर मेरा कौन गवाह था ? एक बार जेल भी जा चुका हूँ, मेरी बात मानता कौन ? फिर इसकी माँ साकसात देवी थी । थाने में भी रपट कराने आता और पुलिस भी नहीं सुनती तो कौन मुझसे हमदर्दी दिखाता !'

एक ठहाका लगा ।

'माँ !' रामभरोसे ने कहा : 'सरकार ! मैं उसे बूआ कहता था । बूआ-बूआ थी नहीं मेरी । मैं जिस गाड़ी पर नौकर था वह भैया हरदेव की थी । मैं भी उन्हीं के गाँव का हूँ, सो परदेस में मैंने भी जबरदस्ती का नाता जोड़ लिया था ।'

'तेरा क्या खयाल है ?' दरोगाजी ने पूछा : 'हरदेव कैसा आदमी था ?'

'बड़ा असराफ़ आदमी था हुजूर ! बड़े दिल वाला था । मेरी तो बोटी-बोटी में उसका नमक है ।'

'लेकिन उसका खून हो गया है और तूने उसके लिये कुछ नहीं किया ?'

'हुजूर अब वह है ही कहाँ ? अब उसके लिये हो भी क्या सकता है ? जब उसके पास पहुँचा तब जरूर कुछ करूँगा ।'

न जाने कैसा स्नेह था कि हास करते हुए भी उसकी आँखें इस याद पर भीग आई । उसने मुँह मोड़कर कुर्ते की आस्तीन से आँखें पोंछी, कुछ खिसियाई-सी हँसी हँसा और कहा : 'हुजूर ! उसकी बड़ी इच्छा थी कि मेरा किसी तरह घर बस जाये ।'

अंगरेजी में दरोगाजी ने कहा : 'सुना वकील साहेब ! यह है कांग्रेस राज । कांग्रेस कहती है कि दया से काम लो । अब यह आदमी दया से कभी सच उगल सकता है ? लेकिन आज़ादी के पहले यह मेरे सामने इतना बोल सकता था ? कभी नहीं ।'

पत्रकार ने अंगरेजी में उत्तर दिया : 'आज़ादी के लिये हमें अपने सारे रवैय्ये बदलने चाहियें दरोगाजी । गांधी जी ने अपने रास्ते से राज बदल दिया ।'

अंगरेजी में ही दरोगा जी ने उत्तर दिया : 'गांधी जी का पाला गुण्डों से नहीं, वायसराय से ँड़ता था, जो खुद लार्ड होता था। आप अखबार-नवीस हैं, रोज़ नई-नई बातें फैलाते हैं !'

डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए। वकील लाचार था, पत्रकार महोदय भी उठे। वकील साहब ने सिगरेट सुलगाई तो जैसे दरोगा जी को याद हो आया : 'अरे अभी तक सिगरेट नहीं लाया कोई.....'

वकील साहब ने कहा : 'न न, रहने दीजिये दरोगाजी, घर का-सा मामला है। है, मेरे पास है।'

'क्या बताऊँ ?' दरोगाजी ने अंगरेजी में कहा : 'अब आप ही देखिये ! डिसिप्लिन तो रहा ही नहीं।'

भीड़ छूट गई और दरोगाजी ने कहा : 'सब चले जाओ ! रामभरोसे यहीं रहेगा।'

'बैठ जा !' दरोगाजी ने कहा।

रामभरोसे उकड़ूँ बैठ गया।

रामभरोसे के भीतर जैसे उथल-पुथल हो रही थी।

'तुझे किसी का डर नहीं है ?'

'है क्यों नहीं सरकार ! लेकिन सरकार अब कैसा डर ? जिसने पाल-पोस कर बड़ा किया, जिसके चरन छूकर माथे से हाथ लगाते मन न भरा, सरकार ! क्या बताऊँ ! वह सहारा ही नहीं रहा।'

'कौन हरदेव ?'

'हाँ हजूर ! कुछ समझ में नहीं आता ! इस लड़की ने उसे कतल कर दिया ! दराँत मार-मारकर ! सरकार ! एक बात जरूर कहूँगा। बड़ी दिलेर है। और औरत तो कलाई पकड़ते ही गोद में आ बैठती है, मगर यह ! कलाई छोड़ इसकी कमर पकड़ लो, पर मजाल है मक्खी भी तन पर बैठ जाने दे !'

हवालात में बन्द विद्या का चित्र उसकी कल्पना में जागने लगा और उसके मन में अजीब-सी खिचड़ी पकने लगी।

रामभरोसे का प्रतिशोध मानो ललक उठा। वह अपने आप बड़-बड़ाया—‘उमने भैया को मार डाला ! अरे भैया का जहाँ पसीना गिरता वहाँ मैं खून बहा देता ! मगर इससे मैं क्या कहूँ हजूर ! औरत है। नाजुक है। नादान है।’ उसका स्नेह जैसे बफरकर फिर बँध गया।

‘हाँ फिर ?’ दरोगा जी ने टोह लेते हुए कहा : ‘तो तू उस पर मरता है ? तभी तो साले ! अपने भैया की मौत भी तुझे नहीं रुलाती ! तू तो इश्क का मारा है ! क्रांतिल पर जान दिये बैठा है।’

‘सरकार !’ रामभरोसे जैसे कुछ सोचने लगा।

‘तुझे पता है, इसने उसे क्यों मारा ?’

एकदम सचेत रामभरोसे ने कहा : ‘पता नहीं हजूर ! मुझे क्या खबर ?’

‘अच्छा, इसकी माँ तो सती थी। हो सकता है अकेली जान हरदेव ने इस पर हाथ डाला हो। क्यों तेरा क्या खयाल है। हरदेव ने अपने मन की बात तुझमें कभी कही तो होगी ?’

‘हजूर एक बात है !’

‘वह क्या ?’

‘जैसा आप कहते हैं, वह भी हो सकता है।’

दरोगा हतभ्रम हुए।

‘मैं सोचता हूँ हजूर, कि यह हुआ कैसे ? एक बात अरज करूँ सरकार ?’

दरोगा जी ने चारों ओर देखा।

‘बोल !’

‘वह तो यही कहता था कि रामभरोसे ! किसी तरह इस लड़की से तेरा पुरनविवाह कराऊँ। मैं तो छुट्टी पाऊँ। मेरी ज़िन्दगी तो निकल गई यों ही, पर तेरा घर बस जायेगा और पाँव मैं बेड़ियाँ पड़ जायेंगी तो तू लफंगेवाजी भी न करेगा ! ठीक कहते थे भैया सरकार ! हमें और कौन देगा अपनी लड़की ! हम खुद देने वाले होते, तो अपने आपको न देते, ऐसे हमारे गुन हैं। हजूर ! बजार की चाट में और बात है। घर बसाना

अच्छे आदमी का काम है न ?' उसके लिए मानो एकांत हो गया था ।
रामभरोसे अब अपने ही विचारों में डूबने-उतराने लगा था ।

कठोर हृदय दरोगा को भी उसके भीतर की इस कोमलता को देखकर आश्चर्य हुआ । रामभरोसे बड़बड़ाता रहा : 'हजूर ! जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं है । अच्छा करते हैं वे भी दुखी हैं ; बुरा करते हैं, वे बुरा फल पाते हैं । सरकार ! आप हम जैसे गुण्डों को दबाते हैं, दुनिया के भले के लिए । खूब समझता हूँ सरकार, आप न हों तो हम ही हम हों, यों जो थोड़ी-बहुत हाथाचाटी आप लोगों में चलती है, वह कितनी-सी ! पर हजूर ! हम तो बुरे मसहूर हैं ही, आपको भी लोग भला नहीं समझते ! कुछ तथ्य (तत्त्व) है नहीं दुनिया में !'

दरोगा ने डाँटा : 'क्यों वे ! फिर बरुने लगा !'

'सरकार एक अरज करूँ ?'

'हाँ बोल !'

'विद्या बन्द है ?'

'हाँ !'

'उसका कोई सहारा नहीं ?'

'कोई नहीं ।'

रामभरोसे की आँखें जैसे झुक गईं । फिर वह सोचते हुए बोला :
'सरकार ! कतल तो उसने किया ही है ?'

रामभरोसे जैसे किसी संतुलन के खो जाने से विचलित लग रहा था ।
वह अभी तक उबल रहा था ।

दरोगाजी समझे नहीं ।

'किया तो है ही ।' उन्होंने कहा ।

'कतल !' यह कहते हुए वह सिहर उठा : 'कमबख्त ने मार ही डाला !'

'तो ?'

'हजूर उसे फाँसी होगी ?'

‘यानी ?’

‘लेकिन सरकार को इसमें क्या फायदा होगा ?’

बात ठोस थी । न्याय और सत्य दो अलग पक्ष थे ।

‘कतल किया है उसने । सारे गाँव ने लाश देखी है’, रामभरोसे ने कहा : ‘उसे फाँसी होगी । मगर क्यों ? क्योंकि उसकी तरफ़ कोई नहीं है ! कोई नहीं है क्योंकि वह घमंडिन है । मगर ! मगर हज़ूर ! लोग कहते हैं कि सत बड़ी चीज़ है । अगर वह मेरी औरत होती और पत न रखती तो क्या मैं मान जाता ? हज़र ! कसूर माफ़ हो । आपही बतायें सरकार ! अगर आपके ही घर से...’

‘ख़बरदार !’ दरोगाजी गरजे ।

‘अच्छा छोड़िये ! आपके नहीं, किसी और के ही सही । सरकार ! जो औरत मरद के रहते दूसरे से यारी कर ले वह अच्छी नहीं होती न ? वह आदमी भी बुग़ होता है, जैसे मैं, जो दूसरे की बहू-बेटी पर डोरा डालता है । तो सरकार ! मैं तो बाहर बैठा हूँ, और जिसने पत रखा है, वह हवालात में बन्द है ?’

उन्होंने कहा : ‘फिर ?’

‘फिर क्या सरकार ! तभी कहते हैं कि इसी का नाम दुनिया है !’

‘तू जानता है, मैंने तुझे क्यों रोका है ?’

‘सरकार मुझे पुलस का गवाह बनाना चाहते हैं ।’

दरोगा जी चौंक उठे !

‘तुझसे किसने कहा ?’

‘अब सरकार ने अभी तक दो धप्प भी नहीं जमवाये इससे बढ़कर इसका क्या सबूत हो सकता है ! वनी, कसूर माफ़ हो हज़ूर ! सरकारी अफ़सर अपने बाप की भी नहीं सुनते, फिर इस बख़्त तो गधे को बाप बनाया जा रहा है ।’

‘तो तू तैयार है न ?’

‘एक बार सरकार मुझे उससे मिल लेने दें । आखिर गवाही देनी

होगी तो कहूँगा क्या ?'

‘वह तो हम बता देंगे सब !’

‘जानता हूँ मालिक ! केस होता कहीं और है, पर बनता है वह थाने में ! योही सदा से इन्साफ होता आया है । और हजूर ! मेरी बात का मोल ही क्या ? सजायाफ़ता हूँ । जूए में जेल जा चुका हूँ । पर सरकार ! परमात्मा एक लीला दिखा गया कि काली भैंस में से सफ़ेद दूध उतरता है, और दूसरी ओर उससे भी बड़ी लीला पुलम दिखाती है कि काले को सफ़ेद करके फिर सफ़ेद को काली कर देती है ।’ रामभरोसे ने अंटी में हाथ डालकर बाहर किया : ‘यह है सौ रुपये ।’

‘यह क्या बे ?’

‘हजूर की जूतियों के लिए पालिस आ जायेगी इससे । कहते हैं न सरकार ! जिसका जितना बड़ा जूना हो, उसे उतनी ही पालिम देनी चाहिये ।’

सौ का नया नोट रामभरोसे ने बढ़कर उनकी जेब में सरका दिया । ‘हजूर ! फूल है ये तो भेंट को ! मैं गरीब ! मुझे छोड़ दें । मुझे कुछ दिखाई नहीं देता । मैं क्या करूँ ? क्या न करूँ ? उसने मुझे पाला था हजूर ! पर यह जो है न विद्या । यह बहुत अच्छी है सरकार ! मैं क्या करूँ ? समझ में नहीं आता कुछ ।’

‘अबे लुच्चे ! ऐसा आशिक है तू ?’ दरोगा जी ने धीरे से हँसकर कहा ।

‘अजीब औरत है ! भैया कहते थे कि रामभरोसे ! औरत के काटे का इलाज नहीं होता ! पहले फन कुचल दे तब चैन लीजो । मगर सरकार ! बड़े-बड़े हार गये । सालगा पान वाले के यहाँ टंगी है तस्वीर । आपने भी देखी होगी । विस्वामित्र भी हार गये । ऋषि-मुनि तक हार गये ! बड़े-बड़े संपेरे भी कब मरते हैं ? किसी न किसी दिन कोई साँप उस ही जाता है ।’ फिर उसने दाँत पीसकर कहा : ‘सरकार बड़ी पारसा बनती है ये !’

परन्तु उसके बाद वह कुछ नहीं कह सका । जैसे उसका गला रुँध गया था ।

‘तो तू उससे मिलना चाहता है ?’

‘हाँ सरकार !’

‘जा चला जा ।’

‘अभी नहीं ।’

‘फिर ?’

‘रात को अकेले में मिलूँगा सरकार । गाँव में ख़बर न पड़नी चाहिए ।’

‘इसकी माँ तो बड़ी ऊँचे चरित्तर वाली थी ?’ दरोगाजी ने काटकर पूछा ।

रामभरोसे चुप रहा । फिर पूछा : ‘विद्या कहती थी कुछ ?’

‘सती बताती है ।’

रामभरोसे ने आर्तस्वर से कहा : ‘सती की जय हो । औरत भी कैसी अजीब होती है । सब दुख पी जाए । मर जाये ! सत तो यह है । तेरी जय हो, तेरी जय हो !’ रामभरोसे ने सिर हिलाया और कहा, ‘नहीं तो भला वह सती होती हज़ूर ।’ और वह नीचे देखने लगा । दरोगाजी देखते रहे । फिर बोला : ‘सरकार ! पैसा मैं ख़रच करूँगा । विद्या ने इज्जत के लिए खून किया है । पता नहीं हरदेव भैया को क्या हुआ या इसी विद्या को क्या हुआ । हरदेव भैया ने कहा था : विद्या को लेकर घर बसा ले ! आप जानें सरकार ! यह बच सकती है ? अदालत सबूत मिलने पर छोड़ सकती है इसे ? सौ खरच हो जाये, दौ सौ, पाँच सौ, हजार, डेढ़ हजार, दो हजार की मिट्टी हो जाये ! पर इसे बचना चाहिये, चाहे मैं भिखारी क्यों न हो जाऊँ ! फिर कमा लूँगा सरकार ।’

रात हो आई । अन्धेरा आ गया, वही पुराना । एक स्याही, जिसे कोई छू नहीं सकता । जिसे कोई देखना चाहे तो लालटेन जलानी पड़ती है, वरना न खुद दीखता है, न किसी को देखने देता है । आया और सब जगह समा गया । इन्सान उससे लड़कर अपनी इंसानियत जताने लगा यहाँ तक कि थाने में भी लालटेनें जल गईं । गाँव पर ख़ामोशी छा गई । आकाश के बादल धधर-धधर सरककर हवा से रस्साकशी करते हुए लगते थे । कभी-कभी धरती के पेड़ घने पत्तों जैसे बालों को जोर से हिला देते, फिर सब

चुप हो जाता ।

थाने म अब बाहर रौंद लग रही थी ।

रामभरोसे धीरे से घुस आया ।

‘आ गया ?’ दरोगाजी ने कहा ।

‘हाँ सरकार !’

‘जुझहारसिंह ! इसे ले जाओ उसके पास । तुम खुद कुछ दूर पर रहना । बाकी सिपाहियों को बाहर भेज देना ।’

वे चल पड़े ।

गाँव की चरचा अब थककर सो रही थी । कभी-कभी कुत्ते भूँक पड़ते थे । और कभी-कभी ख्यालबाजों के गीत सुनाई दे जाते थे, जिनमें बहुत-सी मोटी आवाजों के बीच एक पतली आवाज भी सुनाई पड़ जाती थी ।

रामभरोसे जंगले के सामने जा खड़ा हुआ । विद्या हाथ गोद में रखे दीवार से टिकी बैठी थी ।

जुझहारसिंह हट गया, जंगला खोलकर ।

‘विद्या !’

कोई उत्तर नहीं ।

लालटेन को उसने आगे सरकाया । देखकर जाने क्यों उसका गला भर आया । फिर पुकारा : ‘विद्या !’

विद्या जाग गई । यह उसके ऊपर पड़ती हल्की रोशनी से साफ दिखाई दिया ।

‘ले यह खा ले कमबखत ! कब से भूखी बैठी है ।’ रामभरोसे ने रोटियाँ कपड़े से खोलीं और भीतर बढ़ा दीं । ‘खा लेगी ? हाथ मुँह तक चला जाता है न ? ले ल ।’

विद्या चौंकी । उस स्नेह भरे स्वर ने उसे एक दुःख की नयी घुम-ड़न दी ।

‘कौन है ?’

‘मुझे मत पहचान । पहचानने से तू धिन करेगी । पहले रोटी खाले ।’

‘कौन ?’ उसने शायद पहचान लिया ।

‘मैं हूँ, जिसे एक दिन तूने दराँत मारा था । मैं हूँ जिसके कारण तू बदनाम हुई । पहचान गई ? रामभरोसे । कर ले, धिन कर ले । पर मैं तुझे चाहता हूँ । तब नहीं चाहता था । तब मुझे तेरा जोबन खींचता था, अब मुझे तू खींचती है ।’ रामभरोसे का स्वर भरा गया था । वह कहता गया : ‘रोटी परमात्मा की है, किसी की नहीं । इसे खा ले । इस पर न रुठ ।’

सन्नद्ध हो गई विद्या ।

एकांत !

सामने रामभरोसे !!

काँप गया रोम-रोम ! क्या करे ? कहाँ जाये ? पर साहस किया । हथकड़ियाँ भनभना गई ।

‘क्यों आया है तू ?’

‘मिलने आया हूँ, क्योंकि मेरे सिवाय कोई नहीं है जो असल बात जानता हो !’

‘चला जा यहाँ से !’

‘चला भी जाऊँगा ! डरती क्यों है ?’

विद्या ने इधर-उधर देखा ।

‘अरी बैठ तो जाने दे ।’ रामभरोसे ने कहा और बैठकर कहा : ‘रोटी खाले ।’

‘नहीं खाती !’

‘क्यों ?’

‘मैं तो मरूँगी ।’

‘तू जानती है पूरे सौ के पत्ते में आग लगाई है मैंने तेरे पीछे, तब तो आ पाया हूँ यहाँ ।’

विद्या ने अचरज से देखा । कुछ कह नहीं सकी ।

रामभरोसे ने उसकी ओर न देखते हुए अपने आपसे कहा : ‘कोई सोचे

कि बिना कजा आये मर जायेगा सो नहीं हो सकता । समझी ? जानै है तू ? बिना जर के मरद और बिना नर के औरत का काम दुनिया में नहीं चलता ।’

‘निकल जा यहाँ से ! गुण्डा कहीं का ! मुझे मर जाने दे, मैं पापिन ही भली, पर यहाँ मुझे तंग करने वाला कोई नहीं ।’

‘ओहो ! ऐसी कमान-सी क्यों ईंठी जाय तू ! मेरी बात तो सुन !’ रामभरोसे ने कहा : ‘भूखी मर जायेगी ?’

‘हाँ ।’

‘कोई मरा है आज तक ? देख अपने हाथ से बनाकर लाया हूँ तेरे लिये । गाँव में कोई नहीं जानता ।’

‘परमात्मा तो जानता है ।’

‘तेरे सिर पै तो खून सवार हो गया है । भला परमात्मा का ही राज होता तो तू हवालात में बंद होती ? तुझे होना चाहिये था कि मुझे ? और तू जैसे नहीं जानती कि धरम वह रास्ता है, जिस पर चलकर आदमी को बरबादी के सिवाय कुछ नही मिलता । देख ले राजा हरिश्चंद्र को । अपने को देख ले ।’

‘तो भी क्या ? धरम तो धरम ही ठहरा ।’

‘पर तू करती भी क्या ?’ रामभरोसे ने अपने आपसे सोचते हुए कहा : ‘अकेली औरत ! घर में कोई नहीं । आदमी भी क्या से क्या हो जाता है । मैं छत पर खड़ा सुन रहा था भैया हरदेव की बातें । उसे फूलों की मौत का ऐसा सदमा लगा था कि अकल ही गुम हो गई । तुझे अकेली जान के बढ़ा था वह ? गुस्सा ! गुस्से ने पागल कर दिया उसे ! मैं चौंक उठा । वह तुझे बेटी मानता था । मुझसे कहता था कि रामभरोसे ! विद्या को लेकर घर बसा के सरीफों की तरह रह । हम पापी हैं, हमारी बात छोड़ दे । विद्या को तू बसा ले तो समझूंगा तूने मेरी बेटी उबार दी । समझी ! ऐसा था उसका मन तेरी तरफ ! फूलो रोई थी । और एक दिन उसी ने मुझे भेजा था तेरे पास । वह अंधी थी । अरे मुझे एक-एक बात

मालूम है। तू भी इत्ता न जानती हो, जित्ता मैं जानता हूँ। जिस बखत तैने मेरे दराँत मारा, तब, तभी, जानती है मेरे मन में क्या आया ? पहले तो आया कि तेरा खून पी जाऊँ ! पर ज्यों-ज्यों तुझे याद किया, तू मुझे पवित्तर लगी। सोचा, यह सचमुच सती है। अगर यह घर बसा ले तो सातों जनम तर जायें। हरदेव यही कहते थे, मगर भाग की बात ! होनी तो कुछ और ही थी !'

विद्या स्तब्ध रही। रामभरोसे ने फिर कहा : 'छत पर से मैंने सुना। जब वह तेरी तरफ़ बढ़ा तो मुझे लगा मेरा सिर फट जायेगा। उसे नहीं खबर थी कि मैं वहाँ था। मेरे मन में आया उतर कर उसका खून कर दूँ। जिसे उसने बेटी कहा, उसी पर हाथ डाल रहा था वह ! जिसे मैं इतना अच्छा समझता था, वह ऐसा नीच था ! सोचा, मेरा घर बसवाने में कहीं उसकी नीयत यही तो नहीं थी। पर मैं डर गया। उसने मुझे पाला था। मेरा रोम-रोम उसके नमक से पला था। फिर सोचा, देखूँ विद्या क्या कहती है ? मुझे मारा था, इसे मारती है या नहीं ? अब अकेली है देखूँ कैसे पत वचाती है। मैं नहीं कह सकती विद्या ! मैं क्या सोच गया, तब आँख खुली जब उसकी चीख निकली। मैं भागा। तुझे देखा। देखा सती कौन थी ! देखा तू कितनी अच्छी थी ! पर अब क्या सोचा है तूने ? अब तू इकली है। सारा गाम तेरे खिलाफ़ है। तेरी ओर कोई नहीं। और है तो कौन ? मैं हूँ। गुण्डा ! बदजात ! वह जिसने तुझे बदनाम कराया। हविस का जानवर !' रामभरोसे ने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया अपना।

विद्या की आँखें भर आईं।

'तू रोता है ?'

रामभरोसे ने आँखें पोंछ लीं।

विद्या की आँखों से आँसू बहने लगे। आश्चर्य उनमें भाँक रहा था। रामभरोसे उठा। उसके गालों पर बहते आँसू पोंछने को हाथ बढ़ाया ही था कि वह फुफकार उठी : 'खबरदार जो मुझे छुआ। कितना-सा तू, और कितना-सा तेरा दरोगा है। चिल्ला-चिल्ला के गाँव इकट्ठा कर लूंगी।''

‘बेकार बात मत कर ।’ रामभरोसे ने कहा : ‘हठ उनपर चलता है जिनके मन में निभाने की कसक होनी है ।’

विद्या चुप हो गई ।

रामभरोसे आराम से बैठ गया और बोला : ‘गाँव में किसमें दम है जो आये । पुलरा में बड़ा दम है विद्या । चाहे तो तुम्हें रात में कहीं का न रखे । है कौन जो तेरा साथ देगा ।’

विद्या के नयनों में आतंक-सा आ गया । बोल ही तो उठी : ‘रात भी तो बंद रही ।’ रामभरोसे कुछ देर तक उसे घूरता रहा । निस्तब्ध । और व्यंग्य से हँसकर उसने कहा : ‘तेरी माँ सती थी न ?’

‘तुम्हें उससे क्या ? वह मर गई । वह अपने पाप का प्रासचित्त कर गई ।’

‘तू सचमुच बहुत अच्छी है विद्या !’ उसने केवल इतना ही कहा ।

रामभरोसे की बात ने विद्या का मन भिँकोड़ कर रख दिया । बोली : ‘तू मत कह मुझे सरम आती है ।’

‘ठीक कहती है । मैं मानता हूँ । मैं तेरी तरफ बोलूँ, इससे अच्छा तो यही है कि तू बदनाम ही मर जाये । मर जाये । अच्छा हो तेरी लाश को कुत्ते खा जायें, पर मैं न छू सकूँ तुम्हें !’ विद्या फिर रो पड़ी । रामभरोसे जैसे जाग उठा । कहा : ‘तू घबरा रही है ? आज रात सोच ले । समझी ! मैं सवेरे फिर आऊँगा ।’

विद्या रोती रही ।

‘क्यों रोती है ? मैं तो नहीं कहता कि रोटी खा ले । मर जा भूखी । विधवा ! बदचलन ! सब कुछ तो है न तू ? मैं कब कहता हूँ तू जी ! मर जा ! मर जा !’

उसकी आवाज़ लरज उठी, और उसने मुँह फेरकर कहा : ‘क्यों आई तू इस गाम में । मैं गुंडा भला था । हम अच्छे थे अपने पाप में । हमें दुख तो न था । कमबख्त ! तूने धरम जगाकर दुख जगा दिया !’ रामभरोसे के सुबकने की आवाज़ गूँज उठी ।

‘अकल से काम ले ।’ दूर से जुझहारसिंह ने पुकारा : ‘कमबख्त तू क्यों रो रहा है ?’

उस आवाज़ को सुनकर विद्या ऐसी हो गई जैसे पकड़ी गई । बोली : ‘चला जा यहाँ से ।’

‘जाता हूँ ।’ रामभरोसे उठ खड़ा हुआ । फिर कहा : ‘रोटी नहीं खायेगी ? मर जायेगी ? मर जा ! तू मर ही जाये तो अच्छा । अरी, जरा सोच तू क्या है ? क्या देखा है तूने ज़िंदगी में । तू मर जाये तो मेरा कलेस तो छूट जाये ।’

विद्या ने शून्य दृष्टि से देखते हुए कहा : ‘हाँ ! मैं जीकर भी क्या करूँगी ? तू भी मुझसे अपना बदला ले ले । ले ले अपना बदला ! तेरी भी छाती ठंडी हो जाये ! तेरा नमक चुक जाये ।’

‘मैं तुमसे बदला लेना चाहता तो क्या से क्या कह जाता । गुंडा हूँ मैं, कौन नहीं जानता । पर बचपन से राह पर कुत्तों के संग पला हूँ विद्या । इसलिये जानता हूँ कि कौन ठोकर मारता है गाड़ी के नीचे दबने से बचाने के लिये, और कौन मीठी गोली डालता है, ज़हर बुझी, सदा-सदा के लिये सुला देने के लिये ।’

उसके स्वर में कुछ था कि विद्या उसको फटकारना चाहकर भी फटकार नहीं सकी ।

रोटियाँ खुली पड़ी थीं ।

‘इन्हें ले जा ।’ विद्या ने कहा ।

‘तू समझती है मैं इनमें फिर कोई चीज़ मिला लाया हूँ !’ उसने दृढ़ता से पूछा : ‘लेकिन तेरा डरना भी वाजिब ही है । खैर ! लिये जाता हूँ इन्हें । बुरा और अच्छा क्या है, यह मैं नहीं जानता । पर बुरे को बुरा ही बर्ताव मिले तो बुरा क्या है । पर यह समझ ले कि तेरे लिये मैं कसर नहीं उठा रखूँगा । एक बार तुझे नेकनामी दिलाकर ही रहूँगा ।’

‘लेकिन फिर अम्मा !’

‘तुझे अब भी उसका खयाल है !’ रामभरोसे ने बड़े ही आश्चर्य से

पूछा : 'जैसा मैं कहूँ, वैसे बोलती चल । छूट जायेगी ।'

'वह मेरी माँ थी !' वह फिर रोने लगी ।

रामभरोसे अवाक् खड़ा रहा ।

'तुझे ऐसी प्यारी थी वह !'

'माँ थी वह ! माँ !'

'फिर हम-तुम रहेंगे, चैन से रहेंगे', रामभरोसे ने कहा : 'मरों को मरने दे ! माँ थी सो थी । पागल न बन ।'

विद्या के नयन विशोभ से जल उठे । रामभरोसे की आँखें स्थिर हो गई थीं ।

'तेरे संग मैं ?' विद्या ने घृणा से कहा : 'चला जा यहाँ से नीच ! पापी !'

रामभरोसे ने कहा : 'सोच के देख !'

'चला जा मेरी आँखों के सामने से ।'

'जान बहुत प्यारी होती है ।'

'देख लूंगी सब,' विद्या ने कहा : 'पर तू मेरे सामने से चला जा !'

वह बाहर चला गया ।

विद्या ने देखा ।

जुझहारसिंह ने जंगला लगाकर ताला डाल दिया । फिर बाहर सुनाई दिया : 'जमादार सा' ब ! बिचारी को हवालात में बंद कर तो रखा है, फिर हथकड़ी क्यों डाल रखी है ?'

'अरे खतरनाक औरत है ।' जुझहारसिंह ने कहा : 'कहीं मौका लग गया और अंधेरा है ही, भाग निकली ।'

'कसम है !' रामभरोसे का स्वर सुनाई दिया : 'दरोगाजी से कहकर हाथ तो खुलवा दो । कुछ खिलवा तो दो उसे ।'

'खाती तो है ही नहीं । अब तो दो-चार बेंत पड़ें तो खायेगी । मार से भूत भागता है ।' फिर आवाजें बंद हो गई ।

बैठ गई वह ।

आधीरात का गजर बजा। एक-एक आवाज़ अंधेरे में गूँज गई। पहले घर के आँगन से सुनती थी वह। आज सुन रही है थाने से। अरे वह तो थाने में बंद है। यह उसे अब ध्यान आया है! अभी तक वह क्या सोच रही थी!

मट्टे की गंध बयार पर अब हूलने लगी थी।

बाहर सिपाहियों के बूटों की आवाज़ें कभी-कभी इधर आने पर सुनाई दे जाती थी।

सन्नाटे में सुनाई दिया—जुझहारसिंह कह रहा था : ‘भाई बदनसिंह! अच्छा शिकार हाथ लगा। यह रामभरोसे इसके पीछे दीवाना है। छूट तो जायेगी लौड़िया, मगर यह लौड़ा थाने को निहाल कर जायेगा। इस बखत दस रुपये दे गया है। पाँच तुम्हारे हैं। देखो किसी को खबर न हो कानो-कान। यह वह हमें अलग से दे रहा है कि लौड़िया को हवालात में हम आराम से रखें। कम्बखत जरा रोटी और खा लेती!’

‘खालेगी सब!’ उत्तर सुनाई दिया। विद्या ने सुना और अलसाई रात में अब उसे याद आने लगी—माँ!! क्यों आई वह थाने में!!!

फागुन की मस्त हवा ने जब पीली कमर के भीरे को गाँव के घर में भेजा था और उसने दुपहर के सन्नाटे में अपनी गूँज भर दी थी तब विद्या ने अलसाई आँखों से उभ्र देख कर फिर करवट बदल ली थी। उसका पति उमेश था, स्कूल में मास्टर, आयु २० वर्ष। घर का लाड़ला, और उसी के कारण विद्या भाभी की प्यारी थी, सास की दुलारी। समुर, जेठ उसको घूँघट करते देख आपही हट जाते थे सामने से। ऐसा था उसका सुखमय जीवन। ब्याह को चार बरस बीते थे। बारह की तो थी ही, जब ब्याह हुआ और उसी वर्ष गौना भी। आई तो छोटी गुड़िया-सी। पड़ोसिनों ने हँसी से आँगन गुंजाया और भाभियों ने उसके पति—१६ बरस के अपने देवर को विद्या की ओर दिखा-दिखाकर छोड़ा था—देवर ! अभी कली है। वे भेंग गये थे। सच औरतें कितनी मुँहफट होती हैं ! एक बार झिझक अगर खुल जाये तो ! विद्या ने अपने आप काम शुरू किया। औसत से लम्बा घूँघट काढ़ जाती पनघट, अपनी जिठानी के पाँवों पर पाँव रखती, तरह-तरह की बातें सुनती, बोलती नहीं, घर आती तो बर्तन मलती। यों वह जब तक पन्द्रह बरस की होकर जवान हुई, तब तक तो आँगन का बसना कोठे में बगर गया और भाभी हँसती तो देवर से कहती : 'लालाजी ! क्यों न अपना तबादला यहीं करा लो। साइकिल चलाते-चलाते थक न जाते होंगे।' और वह मुँह फेरकर हँसती। उसका पति सुनता। कुछ भेंपता। कोठे में आकर जूते खोलता तो कहता : 'भाभी भी बस !'

‘अबकी पूरनमासी को मैं बरत करूँगी।’

ऐसी बातें उसे अच्छी लगतीं।

एक रूढ़ि है, जिसमें पात्रिवा का निर्वाह है, और निर्वाह जीवन के खेल का भी पर्याय है।

रोटियाँ सेकती वह । सास परोसती । भाभी दूध औटाती । घर में दो-दो भैंमें थीं और भैंस मान-मनावन वाला जीव ठहरी । जरूरत पड़ती तो सास के साथ वह खेत से घास भी काट लाती । पति को शौक था ख्यालों का । बनाता भी था । जब ढफ और नगाड़े की धुन पर गीत छिड़ते तो गाँव के जुट्टु गाते और उनमें होड़ होती । कई बरसों से आती हुई यह होड़ अब बढ़ गई थी । पारसाल तो लठ्ठ बजते-वजते बचे ।

यों कोठे में पड़ी थी सोचती कि वे अभी आते होंगे और देख लेती थी नीम की छाया—उनींदी वेही छाया, जिसके सामने की भीत के सहारे टिके खड़े रहते थे नारायण खाती के लठ्ठों के पहिये जिन्हें वह मनमानी कीमत पर बेचता था और तीन पुस्त तक की गालियाँ भी खाता था अपनी गैर हाजिरी में ।

नीचे से हठात् आवाजें आई, घबराए स्वर, चिलाहट और हाहाकार... वह भागकर नीचे गई और जो देखा तो रोने का भी दम नहीं रहा...वहीं बैठ गई...

पति की लाश पड़ी थी । सिर तीन जगह से फट गया था । ऐसा था प्रताप संगीत का । ख्यालबाजों में बाजार में लठ्ठ चला था । और सिर फट गये थे । भगड़ा था कि शुरू कौन करेगा । और यों सदा के लिए विद्या का मुहाग उजड़ गया था ।

विद्या को और कुछ याद नहीं । याद है केवल कि सास छाती पीट-पीटकर हाहाकार कर रही थी । बाहर ससुर और जेठ गवाहों को तैयार कर रहे थे और अकेली रह गई थी विद्या, उस हृदयविदारक हाहाकार के बीच...आज भी ताजा-ताजा याद था वह हाहाकार...गर्म सीसे का-सा कानों में जमा हुआ था वह, क्योंकि उन आवाजों में एक स्त्री के जीवन की सारी सत्ता समाहित थी । और तब विद्या के सामने आ खड़ा हुआ था एक विकराल सत्य—वैधव्य !

रंगीन कपड़े उतरे, सफेद धोती आई, मुहागिनों ने मन के भीतर कहीं होंस से भर कर, दूसरी ओर अपने भविष्य को डर-डरकर प्रणाम करते

हुए उसके हाथों की चूड़ियाँ तोड़ दीं और अब उँगलियों में जवानी की किलकारियाँ मारने वाला बिछिया नहीं रहे। जिन बालों पर कभी मास्टर के हाथ सिहर उठते थे, वे रूखे हो गये और माथे की अपनी बिंदिया चूल्हे की लपटों में थरथराने लगी। उसे वह देख सकती थी, मगर छू नहीं सकती थी, क्योंकि उसमें भस्म कर देने की शक्ति थी अब। यौवन के वह उभार जो अंग-अंग में आ रहे थे, जसे बेल बढ़ती है; अब वह उन सबमें लजाने लगी। फूल-सी कहलाती थी जो आयु, अब वह पहाड़-सी कहलाने लगी। ब्राह्मण जाति में पति एक पुल है, जो स्त्री के लिए जन्म और मृत्यु के पर्वतों को मिलाता है, जीवन की भयानक नदी को निरापद बनाता है। वह न रहे, तो कहाँ जाये वह स्त्री ! कब मे होना आ रहा है और यही शाश्वत-सा हो गया है।

यह विद्या के जीवन का एक चित्र है। दूसरा चित्र अब नये ढंग का है।

मायके में सिवाय बूढ़े बाप के कोई मर्द नहीं। और है एक माँ। सो खलिहान का वक्ता। कोई नहीं आया और मसुराल में पहले जहाँ सब कछुए का पेट था अब सब कुछ उसकी पीठ जैसा हो गया। अलस अंधेरे उठती। भैंसों का काम, कंडे थापना, रोटी करना, स्वयं पानी कुँए से लाना, और चौका-बर्तन करना, कपड़े पीट-पीटकर धोना, और फिर वही सब। दिन-रात साम की जली-कटी सुनना। समुद्र ने हत्यारों से रुपये लेकर, पुलिस की रिश्वतें दिलवा कर खून का मामला दबवा दिया था और भाभी अब सिंगार-सजाव में रहती। लेकिन उमड़े हुए बाग की कली पर मुहल्ला सिसाता, यहाँ तक कि एक रात सीढ़ी पर चढ़ रही थी कि जेठ ने बाँह थाम ली। छिटक कर खड़ी हुई तो कहा उसने, 'अरी मत बन। घर की घर में बात छिपी तो रहेगी, कहीं बाहर जाकर कुल की नाक न कटा दीजो।'।

'खून पी जाऊँगी।' कहा था विद्या ने और उसके बाद भाभी का हाथ छूट गया था। जाने क्या कह दिया था जेठ ने उससे किन्तु विद्या सहती रही, सहती रही। सहने का नाम जिन्दगी था। और रूप क्या कहती वह, जैसे

लगाम तुड़ाती घोड़ी थी, उचंग भरी ।

डफ के स्वर डूब गये, ससुराल के फागुनी स्वर वैशाख की लूओं में बदल गये, और भुलसाने लगे विद्या को । उसने अपना मुंह भी शीशे में देखना छोड़ दिया । जहाँ चिकनाई थी, वहाँ रुखाई आ गई और तब एक दिन बूढ़ा बाप आया और बाहर बैठ गया । ऊँचे स्वर से रोई वह बाप से मिलकर, और उसने अपनी आँखें पोंछीं ।

कहा : 'बेटी ! तेरा ऐसा भाग निकला । किसे पता है कि विधना की क्या इच्छा है । उस निर्दयी का कौन ठिकाना ठहरा ।'

'मेरा तो लाल खा गई ?' सास ने भीतर से हुंकारा—दीवार के पीछे से । विद्या क्या कहती ।

बूढ़े ने कहा : 'ऐसा न कहो समधिन । डूबते को तिनके का सहारा होता है । अब तुम्हारे सिवा इसका है ही कौन ?'

'पर लाड़ो तुम्हारी ! हाथ पर हाथ धरे बैठी रहे तो कैसे काम चलेगा ! ऐसी ही महारानी की जनी होती तो पोटली पर पोटली न ले मंगती ।'

'यों तो सरधा थी सो हमने किया समधिन ! कमी तो न आने दी । बरातियों तक ने कहा था कि गिरिधर पंडित ने कसर न रहने दी । यों भगवान ने तुम्हारा हाथ ऊपर रखा है, सो कह लो, पर बेकस के आँसू में गौ का सराप होता है ।'

'तो ले जाओ समधी ! घर ले जाओ । अपने हाथ से सानी करके खिलाना । यहाँ कौन चिन्ता है । अपने यहाँ विधवा के दूध की चाहना नहीं ।'

'समधिन !' बूढ़े ने चिल्लाकर कहा था और हठात् वह शांतिप्रिय आदमी न जाने लाल-लाल आँखें करके चिल्ला उठा था—'तुम्हें तुम्हारे बेटे की सौगन्ध ! मेरी बेटी के लिए तुमने ऐसा कहा । दो रोटी तुम्हारे नहीं हैं, तो मेरे भी दूसरा नहीं है । इसे लाड़ से पाला था । जो बात इसके बस में नहीं, उसका दोस इसे लगाती हो ! भगवान तुम्हें देखेगा । मेरी दूध की धोयी बच्ची पर ऐसा लांछन ! चल बिटिया ! उठ ! देख ली ।'

‘ले तो जाते हो !’ ससुर ने कहा था—‘तुम्हारी बेटी है। हमसे तो इसका जिसके सहारे अपनापन था, वह इसके ग्रह ही छीन ले गये। फिर भी गहने-पत्ते……’

‘अरे तुम धरो अपने पास ! सुहाग का मोल हम नहीं करते।’ और बूढ़ा उठ खड़ा हुआ था।

गाँव में चरचा फैली थी। बतकही हुई थी, लेकिन बूढ़ा अटल था और जब विद्या भीतर चली गई थी तब जेठ ने कहा था : ‘ठीक है, वहाँ पुराने यार होंगे। गई ही अच्छी। यहाँ अपनी नाक किसे कटवानी है।’

विद्या के मन में आया था कि उसकी आँखों में से वह कुटिल हास्य छीन ले। उस समय भाभी उसके गहने लेकर कह रही थी : ‘मैं इन्हें पहनकर अपना सुहाग न उजाड़ूँगी। इन्हें गलवा कर फिर ढलवाओ तब पहनूँगी।’

और जब विद्या पौरी में खड़ी थी, पचास वर्षीय ससुर ने कहा था : ‘अरी तभे क्या यहाँ कुछ दुःख है जो जाती है। कानूनन हम चाहें तो तुम्हे जाने से रोक सकते हैं। पड़ी रह यहीं। वहाँ बूढ़ा मरा तो कौन देखेगा तुम्हे ?’

और एक विचित्र वासना भड़क उठी थी उसके नयनों में। घृणा से विद्या का मन लोह उगलने लगा था भीतर ही भीतर। उसने कहा था अपने बाप से : ‘दादा ! मुझे ले चलो, नहीं तो मैं कूए में कूदकर जान दे दूँगी। यहाँ बड़ा पाप है।’

सुनकर सास ने कहा था : ‘हराम की जनी ! यहाँ पाप बताती है ! निकल मेरे घर से !’

लड़की जब पति के साथ निकलती है सुसराल के लिये, तब मानो वह जीवन-समुद्र पर निकल पड़ती है तूफानों और आंधियों को भेलने के लिये, उन्हें जीत जाने के लिये। लेकिन जब वह अपने बाप के साथ मायके की शरण में लौटती है तब लगता है जैसे चुचाती नाव पर किसी ने कूदकर समुद्र में डूब जाना ही बेहतर समझ लिया हो। सुसराल में स्त्री के

लिये पति है, पति के माध्यम से पुत्र है, यों रक्षक है, रक्षक के बाद रक्षक है, लेकिन मायके में क्या है ? बाप तो जीवन-संग्राम में घायल और थका घोड़ा है, जहाँ गिर गया, वहीं गिर गया, आगे कौन है ?

लेकिन फिर भी एक सहारा है—माँ। बूढ़ी माँ के सहारे से कई लड़कियों ने मायके में चक्की पीसकर दिन निकाले हैं। ज़िन्दगी क्या है भला : पुरबिले जनम के पाप-पुण्य का भोगना। शायद आगे अच्छा जनम मिले। मिले अखण्ड सुहाग।

और विद्या की आँखों के आगे माँ का सुन्दर मुख नाच गया था। चाचा होते तो फ़िकर न थी। अब वह सोलह की है, माँ है करीब इक्तीस-बत्तीस की। पिता हैं करीब पचपन के। चाचा होते तो होते चालीस के। कैसे धाक के आदमी थे। आर्यसमाजी सुधारक। विधवा-विवाह के पक्षपाती।

‘विद्या !’ वृद्ध ने चलते समय कहा था—‘तेरा चाचा देवता पुरुष था। होता तो तेरा पुरनविवाह (पुनर्विवाह) जरूर कराता। पर मुझमें इतना बल नहीं। वैसे तो आगे रोवा-राखा कोई नहीं, फिर भी पैसा तो चाहिए। देखें तेरी माँ क्या कहती है !’

विद्या ने कहा था : ‘भाग में होता दादा, तो यही सुहाग क्यों उजड़ता ? अब तो जित्ते दिन बाकी हैं यों ही गुजर जायेंगे। पुरनविवाह तो सरधा की बात है। हौंस बाकी हो तब न ?’

‘मेरी बेटी !’ बूढ़े ने विद्या को छाती से लगा लिया था।

घर आई थी तो माँ ने देखा था। माँ सुहागिन थी। पूरे गहने पहने। आँखों में काजर पारे। एक क्षण लगा था उसे कि माँ फूलवती शायद उसकी माँ नहीं थी। वह तो बगरते बसन्त-सी डहडहा रही थी। चार बरस बाद देखा था उसे। माँ होकर भी कभी इसने ब्याह के बाद घर नहीं बुलाया। कौआ उड़ाते-उड़ाते विद्या की बाँह थक गई थी। सलूना आया, चला गया, और भी तीज-त्यौहार आये, निकल गये, सास कहती—‘हमारी छोटी बहू ही भली। बड़ी जाये तो जाये। छोटी के रहते घर तो सँभलता

रहेगा।' वह हँसती। जब कभी विद्या का मन भर आता कि मायके से किसी ने सुध न ली, तब उसका पति कहता—'अरी तेरा वह घर नहीं, अब तेरा घर यह है।'

लेकिन लड़की सुसराल में रहकर मायके की ताकत की झलक दिखाती है, अपनी शक्ति की झलक दिखाने, कि है, मेरा भी और कोई है। मैं अकेली नहीं हूँ। तुम जो सुसराल में मुझे व्यवहार देते हो, उससे भी प्यार भरे व्यवहार वाले घर को छोड़कर आई हूँ तुम्हारे घर।

गिरिधर पंडित लड़की वापिस ले आये। यही बात गाँव में गूँज गई। सो कैसे? सो कैसे? कहते हैं कि लड़की को सुसराल में दुख था। हाँ भाई! विधवा बहू को तो सुसराल में गुलामी ही मिलती है। अजी नहीं। कहते हैं सुसर और जेठ दोनों की नीयत खराब थी। सच? कहीं यह विद्या ही तो चरित्र नहीं दिखा बैठी। उमर तो देखो। सावन की धरती आकास के बादलों को देखकर गमकती है अपने आप। पुरवाई चलने से पहले उसका अंग-अंग झनकने लगता है। तो चलो जो पुण्य वहाँ न बाँटा, यही सही। चुप भी रहो। गाँव की बेटाई है। हाँ, हाँ, बहुओं से अच्छी पड़ रहेगी।

यह बातें आई। गिरिधर पंडित ने चिलम में तमाकू धरकर जिस तरह धूँआ उड़ाया, उमी तरह इन बातों को भी उड़ा दिया और कहा : 'दुनिया है।'

संभा को दीप जला।

एक आदमी आकर दादा के पास बैठा। मैला खाकी पतलून। मैली खाकी कमीज। पाँवों में काले मुण्डा बूट। पालिस उधड़ी हुई। मूँछें तनी हुई। उम्र करीब ३५ या ३६। गबरू जवान। रंग गोरा और आँखें कठोर।

'यह तेरा मामा है विद्या।' दादा ने कहा था।

कठोर आँखों में एक कुटिलता दिखाई दी थी। बोला था वह : 'यही है लल्ली!'

विद्या भीतर आ गई थी ।

कहा था : 'अम्मा ! यह बाहर कौन बैठा है । दादा कह रहे हैं मामा है ! यह कहाँ का मामा आ गया अम्मा ! मोटर डिलैवर-सा लगै । सच ! इन डिलैवरों से मुझे तो डर लगै । बड़े गुण्डे होंय ।'

और तब उसने माँ के नयनों में एक विचित्र घृणा देखी थी । उसने कठोर स्वर से कहा था : 'बढ़-बढ़कर बातें न कर । यह भी तेरे नाना का पाला हुआ है । बहुत अच्छा आदमी है । अकल से बात किया कर ! जा हाथ धो के उसे रोटी निकाल दे ।'

समझ नहीं पाई थी विद्या ।

क्या माँ को बुरा लग गया था ?

ठीक ही है । उसने बिना जाने उसे गुण्डा क्यों कह दिया । खुद दादा ने ही तो कहा था : 'यह तेरा मामा है ।'

'खाना खाकर जाना !' दादा ने भीतर आते हुए कहा था ।

'गाड़ी लेकर जाना है अभी जीजा जी ।' हरदेव ने कहा था ।

फूलवती—यानी माँ ने ओट से कहा था : 'चले जाना भैया । लेकिन परसी थाली छोड़कर जाना तो असगुन है ।'

'अच्छी बात है ।' कहकर वह कठोर व्यक्ति पीढ़े पर बैठ गया था । आलथी-पालथी मारकर और उसने सिगरेट सुलगा कर कहा था : 'फूलो ! बिटिया के साथ तो जुलुम हुआ ।'

'अपना-अपना भाग है ।' माँ ने शुष्क स्वर से कहा था : 'बेटी के बाप को झुकना पड़ता है भैया । यों ठसक से काम नहीं चलता । इसके चाचा होते तो इसका फिर ब्याह तो करा देते । इनसे क्या होगा । बुढ़ाते अंग हैं । बदनामी होती पुरनविवाह की । भेल लेते । अब और हमें बिरादरी से लेना-देना भी क्या था !'

हरदेव ने माँ की ओर देखा था । क्षणभर दोनों के नयन मिल गये थे । हरदेव ने कहा : 'चाचा नहीं है तो क्या, मैं तो हूँ ।'

माँ ने आँखें हटाकर कहा था : 'वे तो परचारक थे । हजार जान-

पहचान थीं। अब उनकी जगह तुम्हीं हो भैया। यह तो बीमार ही रहते हैं। फिर भी लड़की को ऐसे दो टूक बात करके पीहर ले आना क्या ठीक हुआ ? स्त्री तो जहाँ ब्याह गई, वहीं से उसकी लाश निकले तो भला। मेरे पेट की जनी है, पर लोक-मरजाद तो है ही। सो क्या हम डिगा सकेंगे, जो राजे-महाराजों से न डिगी ! तुम बताओ ! लड़की वालों का ठसक से काम चल जायेगा ?'

हरदेव ने सिगरेट बुझाकर जेब में रख ली और रोटी खाने लगा ! गिरिधर पंडित ने कोठे में से कहा : 'तू मुझे भोला न समझ विद्या की अम्मा। लेकिन लल्ली की इज्जत का सवाल था। हरदेव ! ससुर और जेठ ही जहाँ चलन के ढीले हों, वहाँ क्या मैं अपनी 'सावित्री' को छोड़ आता ?'

माँ चुप हो गई थी।

मामा ने कहा था : 'ठीक बात है जीजा जी ! ऐसी जगह छोड़ना ठीक नहीं था। मैंने जिस लड़के को पाला है, आपने तो देखा है रामभरोसे ! गरीब ब्रामन का बेटा था। मैंने क्लीनरी में डाल लिया। जवान हो गया है तब से सुसरा जूआ-फूआ खेलने लगा है। पैसा भी खूब इकट्ठा कर लिया है उसने। उससे इसका समाजी ब्याह करा दें !'

'भैया जिम्मेदारी तुम लेते हो ! जवान बेटा घर तो नहीं रखी जा सकती ? इनके पीछे मेरी तो ढलान उमर है, कट भी जायेगी, पर यह पत्थर मैं छाती पर कहाँ तक ढोऊँगी। नाम को रोऊँ कि बेटा के कल को !'

'अच्छा ! उसे लाने की कोशिश करूँगा किसी तरह।' हरदेव ने कहा।

लेकिन विद्या ने कठोर स्वर से कहा था : 'दादा ! मुझे यहाँ लाने की क्या जरूरत थी !'

फूलवती चौंक उठी थी। कहा था : 'क्यों ? मुझे लगता है तेरे सुभाव ने ही वहाँ आग लगाई होगी।'

और बेटो ने माँ को जवाब दिया था : 'हाँ अम्मा ! तैने जो सिखाया था, वही मैंने किया है।'।

'चुप रह। मुँह बंद कर।' माँ ने झुल्लाकर कहा था।

उठ गई थी विद्या और कहा था : 'दादा ? मैं ब्याह नहीं करूँगी। मेरा तो विधना ने इतना ही सुहाग लिखा था। अब वह लुट गया सो लुट गया। मुझे तो दरजा सात तक पढ़ा दो। लड़कियों के किसी मदरसे में मास्टरनी बन जाऊँगी।'।

'उसमें बड़ी इज्जत है क्या ?' माँ ने कहा था : 'सरम की बात है कि तू मेरी बेटाई है, फिर भी तुझसे ऐसी बात करनी पड़ती है। मास्टरनी है रामप्यारी ! कौन नहीं जानता उसके आदमी ने उसके फैल देखकर उसे छोड़ रखा है। जब मुसीबत होती है तब बाहर चली जाती है गाम के, और लौट के जब माँ बनती है तो कह देती है कि आदमी के गई थी।'।

'छिः छिः,' हरदेव ने कहा था : 'क्या कहती है तू लल्ली से। बेटाई से ऐसा नहीं कहा जाता। आखिर बेटाई तेरी है। तू इतनी नाम वाली हुई सो कौन नहीं जानता ! है कोई जो उँगली उठा जाये ! ब्रामनों के घरों में कितना पाप है, सो छिपा-छिपा चले, मगर सब एक दूसरे की जानते हैं। एक तू है, जिसको कोई चाहे तो बदनाम नहीं कर सकता।'।

दादा ने कहा : 'यही तो हरदेव ! फिर इसकी बेटाई क्या ऐसी ही सुख नहीं रहेगी ?'

माँ चुप हो गई थी।

हरदेव खाता रहा था। माँ चुपचाप बैठी उसे देखती रही थी। दादा भीतर हुक्का गुड़गुड़ाते रहे थे और विद्या देखती रही थी। क्या उसने सुसराल से आकर भूल की थी ?

माँ को तो प्रसन्न होना चाहिये था ! अपनी बेटाई दुख में थी, उसमें से उबर कर घर आ गई ! यहीं और कौन था जिसके लिये विद्या के आ जाने से चिंता बढ़ गई हो ! कोई तो नहीं। फिर उसने यह कैसा आक्रोश दिखाया था। उसकी बात से तो ऐसा लगा था जैसे हर हालत में विद्या का

सुसराल में रहना भला था। एक बार बेटी ब्याह दी, सो ब्याह दी। वह जब पराई ही हो गई तो उसको यहाँ लाने की जरूरत ही क्या थी? माँ को विद्या पर तनिक भी विश्वास नहीं है। वह इतनी पवित्र है, ऐसी हठीली है, तो क्या विद्या को वह ऐसी गैयत समझती है? और तो और जब उसे पता है कि उस घर में जेठ और सुसर से निभावड़ा कठिन है, तब भी वह ऐसी बात कहती है? बल्कि विद्या को तो आशा थी कि माँ कहेगी कि तू अच्छी है, जो अपने को पवित्र रख कर लौट आई।

जो हो, बात विद्या की समझ में नहीं आई। दादा खेत पर जाते, विद्या रोटी पहुँचाती। गाँव के लोग-लुगाई देखते! बातें करते। कहते—लड़की बड़ी असील है। कुछ कहते—घुटी हुई भंग है, अच्छी तरह घुटी हुई। औरतें तरह-तरह से सचाई जानने की कोशिश करतीं, यहाँ तक कि विद्या कहती : 'क्या पूछती हो, साफ़-साफ़ जो पूछो।'

'ए बहन, तू तो बिना बात बुरा मानती है?'

कब न जाने, कैसे, वह परिवर्तन आ गया कि एक दिन जब पनघट पर औरतों की बातें सुनीं तो विद्या भी चौंक उठी। माँ अब दिन भर रामायण पढ़ा करती, कभी किसी मढ़ैया पर जाती, कभी किसी मन्दिर में। घर का सारा काम अनजाने ही विद्या पर आ गया था। माँ अब स्नेह दिखाती। दादा कहते : 'बिटिया ! तेरी अम्मा बहुत धरमात्मा है। मुझ बुढ़े से ब्याही तो उसने भी अपने को बूढ़ी बना लिया। तेरे चाचा के लिए मैंने कितनी ही बार लड़कियाँ ढूँढ़ीं, मगर तेरी अम्मा ने कभी भी यह नहीं माना कि उस बिदवान की ऐसी ऐरी-गैरी लड़की से शादी हो जाये ! और वह भी कितना मानता था भाभी को अपनी। अब विचारा रहा ही नहीं !'

दादा आँखें पोंछ लेते। विद्या को भी चाचा की वह बचपन में देखी हुई आकृति याद आती। खदर का कुर्ता और धोती पहनते। गठीला बदन था। हलकी मूँछें रखते थे।

'उसके मरने के बाद।' दादा खेत पर बैठे कहते : 'तेरी अम्मा के

मन में बैराग छा गया ! और मैं हो गया बीमार । इन्हीं दिनों यह हरदेव इस गाँव में आया । मोटर चलती है इसकी । पैसा हाथ में आता है । इसे भी तेरे नाना ने ही पाला था । मिल जाता है कभी-कभी । लेकिन तेरी माँ का मन तो जैसे सबसे फिर गया । दिन-रात जैसे कुछ सोचा करती है !'

इतना था सब कुछ । लेकिन विद्या देखती कि माँ के सिंगार में कमी नहीं थी ।

जेठ की चिलचिलाती धूप आ गई । अब खेतों का काम खतम हो गया था । बाप भी घर रहता । माँ अधिक उदास रहती । हरदेव भी कभी-कभी आता । कभी-कभी आता उसके साथ रामभरोसे । विद्या ने उसे देखा । यही है वह जिसके लिये कहा गया था कि उसका पति होगा । था तो गोरा, लेकिन जाने क्यों देखकर ही उसे वह भला आदमी नहीं लगा था । फिर भी यह उसका कोई कारण नहीं बता सकती थी ।

यों जब सावन आया, खेतों में हल चल रहे थे । रोटी पहुँचा कर दादा को जब विद्या आई घर, तो माँ ने कहा : 'विद्या !'

माँ के पास जा खड़ी हुई वह ।

एकदम सादी साड़ी और कुर्ती पहने थी अम्मा । माथे में बिन्दी थी । और नयनों में आग थी उसके ।

सारे गहने एक छोटे बक्स में रखे थे । हाथ में दो काँच की चूड़ियाँ भर बाकी थीं ।

आँगन के नीम की छाया में बैठी थी वह ।

'यह देख ! अब यह मैं नहीं पहनूँगी बेटी ।'

'क्यों अम्मा ?'

'भरी जवानी जिसकी बिटिया विधवा हो जाये, उसकी माँ साज-सिंगार करती क्या अच्छी लगेगी ? क्या जाने इतने दिन से मेरी अकल पर क्या पत्थर पड़ गये थे, जो मैं नहीं सोच पाई । कल तेरे मामा हरदेव ने कहा तो लगा धरती पाँवों के नीचे से खिसक जायेगी ।'

हरदेव ने कहा ! —विद्या के मन में एक आदर जाग उठा । वह गुण्डा-सा

लगने वाला आदमी यह भी कह सकता है ? तब वह व्यर्थ ही उसके विरुद्ध थी ।

गाँव के लोगों ने सुना तो कहा : 'फूलवती सचमुच भली औरत है ।'

लेकिन किसीने धीरे से कहा : 'और वह जो ड्राइवर आता है उसके पास !'

'तुमने देखा है कभी आते-जाते ! तब आता है जब उसका आदमी घर रहता है ।'

विद्या के कानों में पड़ा — 'ऐसी सती बनती है सो दाल में काला जरूर है । कौन जाने ? आने-जाने के हजार मौके हैं !'

जाने क्यों विद्या के मन में एक काली-सी बिजली कौंध गई, जिससे चारों ओर गहरी स्याही-सी छा गई । लेकिन उसने सोचा था । पापी पाप ही देखता है ।

तीसरे दिन इतवार था । मामा हरदेव आया और बाप के पास बाहर ही बतराता बैठा रहा । माँ मंदिर गई थी, सो अभी-अभी आई थी । वह आकर ऊपर चली गई कोठे में । तभी आँगन में रामभरोसे का स्वर सुनाई दिया—'बुआ !'

'कौन रामभरोसे ?'

'हाँ बुआ ।'

'क्या है रे ?'

'फूफाजी को चिलम न आग चाहिये ।'

'ले ले चूल्हे पर विद्या बैठी है ।'

रामभरोसे आँगन में पेड़ के बगल में बने चूल्हे के पास आ गया और बोला : 'ला विद्या आग दे दे ।'

उसने कहा और कुछ नहीं लेकिन उसके नयनों में एक विचित्र ज्वाला-सी सुलग रही थी । उसने एक लम्बी साँस ली ।

विद्या चिमटे से आग निकालने लगी ।

रामभरोसे ने कहा : 'विद्या ! तेरा दुख मुझसे देखा नहा जाता !'

विद्या चुप रही। चिलम में आँच डाल दी।

रामभरोसे फिर भी नहीं हटा।

आँगन में सन्नाटा था।

विद्या का मन भीतर ही भीतर घबराने लगा।

‘क्या है?’ साहस बाँधकर कहा। किन्तु उसका स्वर लड़खड़ा गया था।

‘मुझसे डरती क्यों है?’ रामभरोसे ने आँखें गड़ाकर कहा। फिर सहसा कहा : ‘अरे तूने आग डाल दी। मैं तबे पर तमाकू रखना तो भूल ही गया। तमाकू कहाँ है?’

ऊपर छज्जे पर धोती सुखाती माँ ने पूछा : ‘क्या बात है रे !’

‘बूआ ! विद्या ने आग भर दी चिलम में पहले, तमाकू नहीं धरी।’

‘बड़ी लापरवाह लड़की है। होश तो इसे है ही नहीं।’ माँ का स्वर सुन पड़ा।

‘इसने मुझसे कहा कब था !’ विद्या ने काटा।

‘देखो बोलचाल !’ स्वर धीमा था : ‘तुझसे बड़ा नहीं है यह ? इसने कि इनने ! नहीं कहा था सोचकर, कि ऐसी मूरख कौन होगी जो तमाकू बिना आँच छोड़ देगी ! जा कोठे में से निकाल ला।’

विद्या कुछ भेंपी-सी, कुछ खिसियाई-सी कोठे में चली गई थी। रामभरोसे पीछे-पीछे आ गया था।

‘तुम क्यों आ रहे हो ?’ विद्या ने पूछा था।

‘तमाकू ढूँढने।’

‘बैठ जाओ ! मैं लाती तो हूँ।’

रामभरोसे ने बढ़कर कहा था : ‘तुझे मैं बुरा लगता हूँ विद्या।’

विद्या को लगा था वह घिर गई थी।

रामभरोसे की आँखें जल रही थीं। उसने धीरे से कहा था : ‘आज न सही, कल तो तू मेरी होगी ही। जानती है, बूआ यही चाहती है।’

‘भूँठा कहीं का।’ वह फुंकार उठी थी।

रामभरोसे मुस्कराया था । वह हटकर बाहर आ गया था । छज्जे पर माँ खड़ी थी, जब विद्या निकलकर आई थी । मानो गम्भीर दृष्टि से देख रही थी । विद्या की ओर उसने घूरकर देखा था ।

‘ले आई तमाकू ?’

‘हाँ ।’

‘रामभरोसे के बिना नहीं मिली ?’

‘मैंने खुद ढूँढ़ ली थी । यह तो आप आ गया था वहाँ, बिना काम के ।’

माँ ने कहा था—‘लड़का ही तो है । जैसी तू चंचल, वैसा वो चंचल ।’ माँ हट गई थी फिर ।

रामभरोसे कनखियों से देखता चिलम लेकर चला गया था । विद्या सोच नहीं पाई थी कि यह क्या है । यह सब क्या हुआ और इसका अन्त क्या था ? वैसे कहने को कुछ भी तो नहीं है । माँ तो सामने ही खड़ी थी ।

माँ ऐसी पतबरता ! नहीं ! चाचा के समाजी सुधार के कारण यह मेरा ब्याह फिर करा देना चाहती है । तभी तो उसने मेरे लिए अपने सुहाग के चिल्ल छोड़-से दिये हैं । पिता वृद्ध हैं तो उसने भी अपने को बुढ़िया बना लिया है । धरम-करम में लगी रहती है । विद्या का सिर झुक गया । आदर से, ममता से । सचमुच, वैरागिन है यह अम्मा । चाचा के बाद यह ऐसी हो गई है ? दया है बस, वह ममता जाने कहाँ चली गई । वैसे माँ समाजी नहीं थी । वह तो तब भी सनातनी थी । मन्दिरों में जाती थी । बारह की ही तो थी विद्या जब उसको सुसराल भेज दिया था । माँ ने और कहा था—‘अब बोझ तो टल गया । अब चौकसी का चौबीस घंटे का कोई डर नहीं ।’

चाचा ने कहा था : ‘बिटिया हुई गले का पत्थर हुई । अभी तो मैं हूँ, भैया हैं, काम तो हल्का नहीं हुआ ।’ वे हँसे थे ।

माँ ने कहा था : ‘चौकसी तुम्हारी क्या है ? बोझ तो बिटिया है ।’

दादा बाहर खाँसने लगे थे । अब यह खाँसी बहुत उठती थी ।

माँ ने कहा था—‘हरदेव भैया ! अब इनका क्या भरोसा है ! कैसे करूँ ? यह लड़की मानती नहीं । कल को भगवान न करे, कुछ इनको हो गया, तो मैं यह पहाड़ लिये-लिये कैसे दिन काटूंगी । मेरी अकेली का तो कुछ नहीं । दो-चार-छः खेत हैं । पेट को बहुत हैं । पर इसका क्या होगा । कहती हूँ तो मानती नहीं ।’

हरदेव ने हँसकर कहा था : ‘तू बैरागिन ! तेरी बेटी बैरागिन । अरी ! इसे रँगना है तो अपने रंग में रंग । एक को दूसरी का सहारा ही हो जायेगा । बहुत माँ-बेटियों ने चक्की चलाकर उमर काट दी । यों तो जी को खटका लगा ही रहेगा । इसे दूर करने की मत सोच । अपने रास्ते पर ला, जो दुनिया कहे कि हाँ ! माँ-बेटी दोनों ने धरम का रास्ता पकड़ा ।’

‘अच्छी बात है ।’ माँ ने कहा था : ‘एक से दो भली । सुख में, दुख में साथ रहेंगी । कोई उँगली न उठा पायेगा ।’

हरदेव और रामभरोसे चले गये । माँ घर के कामों में हाथ बँटाने लगी । कहती : ‘रहने दे विद्या । सब काम तू ही न कर । कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?’

विद्या का मन गद्गद् हो जाता ।

माँ लेटती । विद्या कहती : ‘अम्मा पाँव दबा दूँ तेरे । तू मेरे लिए कितना काम करती है ?’

माँ कहती : ‘बिटिया ! हाय इस जवानी में तेरे सरीर पर एक गहना नहीं । मेरे भाग फूटे जो देखकर जी रही हूँ । वह भोग के लड्डू रखे हैं । ले ले, खा ले ।’

विद्या खाती । माँ का दुलार इतना अधिक हो गया कि विद्या समझ नहीं पाई । माँ ही जो ठहरी । कब तक हिया कठोर बनाये रहती । बेटी का दर्द क्या भेलने योग्य है ?

भादों आ गया । घनी अँधेरी चढ़ी डोलने लगी ठंडी हवा पर काले बादलों में कभी-कभी चमकती बिजली का चाबुक फटकारती । छत पर

विद्या और माँ सो रही थीं। आधी रात पपीहा बोल उठा। आँख खुल गई विद्या की। देखा, माँ बिस्तर पर नहीं थी। सोचा, गई होगी पानी-वानी पीने। फिर सो गई थी। बादल बड़ी जोर से गड़गड़ाया था। विद्या ने करवट ली थी। डोरी के पास पिछवाड़े की तरफ भुकी हुई दिखी थी माँ अट्टे की आड़ में, बिजली की कौंध में। विद्या चुपचाप पड़ी रही थी। अँधेरे में माँ आकर उसकी खाट के पास खड़ी रही थी जैसे आहट ले रही हो कि सो रही है कि जाग रही है। विद्या चुप पड़ी रही थी, तब वह अपनी खाट पर बैठ गई थी और धीरे से बड़बड़ा उठी थी—‘उफ यह मनहूस कहाँ से आ गई जाने!’

विद्या समझ नहीं पाई थी। तो क्या माँ का यह लाड़-दुलार भूठा था? उसमें सचाई नहीं थी? यह विद्या ने अभी क्या सुना? विद्या कुछ समझ नहीं पाई।

दूसरे दिन रात हो गई तो माँ ने कहा : ‘क्यों री, क्या यों ही सूख-सूखकर मरेगी? दूध क्यों नहीं पीती?’

‘दूध पीकर क्या करूँगी अम्मा! मैं ठहरी विधवा! मेरे भाग में तो रूखा-सूखा लिखा है।’

‘तो मुझे यहाँ सताने क्यों आई? तुझे ऐसे रखके मैं क्या देखती रहूँगी? मैं भी नहीं पीती। तेरे दादा तो खाँसी में भी पीते हैं। आखिर तो तू मेरी बच्ची है।’

‘अच्छा ला पी लेती हूँ।’

‘मेरी अच्छी बिटिया! ऐसे ही कहना मानती रहेगी तो मन को ढाँढस भी तो बँधा रहेगा।’

विद्या ने गिलास उठाया था। माँ ने कहा था : ‘दूध में बूरा नहीं, तू सहद डालकर पी। खून बढ़ेगा।’

‘मोटी हो गई तो, अम्मा?’

‘यह चूरन मिला ले जरा-सा। फिर चरबी नहीं बढ़ेगी।’

चूरन का कोई स्वाद नहीं था। दूध में शहद मिलाने से आने वाली

हीक हट गई थी इस चूरन से । रात खाट पर जो लेटी तो सबेरे ही आँख खुली । सबेरे माँ की आँखों में दुलार बढ़ गया था । और इस तरह तीन रातें बीत गईं । चौथे दिन माँ ऊपर चली गई थी । चूरन की शीशी आले में रोज की जगह मिली मगर आगे धरी थी मसालेदानी । गर्मी से पसीना आ रहा था । यों ही दूध उठाया चूल्हे से और पी गई । शहद भी नहीं मिलाया । ऊपर आकर खाट पर लेटी तो ठंडी हवा ने मन को सुखिया दिया । पलक झपक गई । आधी रात बीत गई थी । हठात् विद्या को लगा कोई धीरे-धीरे बातें कर रहा था । सुना माँ ने फुसफुसाकर कहा : 'सो रही है । तूने चूरन तो ऐसा दिया है कि गहरी नींद में सो जाती है । चार साल की मौज में इस कमबख्त ने कैसा अड़ंगा डाल दिया था ! मगर अब यह तरकीब तूने ऐसी कर दी कि इसे पता भी नहीं चलता । तेरी चिट्ठी पाकर ही तो इसे बारहवें साल में ही मैंने चटका दिया था ।'

कोई पुरुष बोला । स्वर से विद्या ने समझ लिया । हरदेव था । बोला : 'अभी तू जितनी चतुर है उतना कोई क्या होगा । किसी को आज तक शुबहा भी हुआ ?'

माँ धीरे से हँसी ।

हरदेव ने धीरे से कहा : 'पर अच्छा हो, तो यह हो कि इसे भी तू खेलने दे ।'

माँ ने कहा : 'मैं तो यही चाहती हूँ । बेवकूफ है यह ।'

'कहीं सुन न ले !'

'चूरन दूध में पी के सोई है । तू फिकर न कर ।'

'रामभरोसे मरा जा रहा है इसके लिये ।'

'लड़का जोड़ का है । अगर यह राजी हो जाये तो भला क्या है डर दुनिया में ? मैं तुझे आराम से बुला सकूंगी और यह भी दुःख न पायेगी । दुनिया दिखावे की है । लुगाई को खसम की आड़ और धरम की ठाड़ । फिर क्या डर है ?'

'अच्छा तो मैं चलूँ ? तू तरकीब सोच ।'

‘तरकीब ? मंदिर में बताऊँगी कल ।’

विद्या का साहस नहीं हुआ कि वह आँख खोलकर देखे । देह पसीने से तरबतर हो गई । उसे लगा, वह बेहोश हो गई थी । माथा चकरा रहा था । चक्कर-से आ रहे थे । जब कुछ घबराहट कम हुई तब आँखें तनिक खोलकर देखा । माँ अपनी खाट पर लेटी थी ।

‘माँ !’

‘विद्या का माथा फटने लगा !’

यही थी धरम-करम में लगी बैरागन पतबरता माँ ! यही थी जो बूढ़े पति और सारे गाँव की आँखों में धूल डाले जीती थी । यही कारण था कि यह विद्या का आगमन देखकर क्रुद्ध हो गई थी ! यही स्त्री है जो अपने पाप के सुख के लिये अपनी ही बेटी को नींद की बेहोशी में सुला देती है रोज़ और अब उसका भी पतन कराना चाहती है ! ऐसी नीच है यह ! और अब कल तरकीब बतायेगी ?

जी किया कि विद्या चिल्ला उठे और सबसे पुकार-पुकार कर कह उठे ! किंतु कैसे ! वह तो माँ थी ! माँ ! उसकी इज्जत को बेटी ही लुटवा दे ? कैसे हो सकता है यह ? बारहवें बरस बेटी को सुसराल चटका दिया, फिर कभी बुलाया तक नहीं, यह सब क्यों ? पति को धोखा दिया । वह पति इसे पतिबरता समझना है ! उसका विश्वास ऐसा अटूट है ! तो क्या यह माँ शुरू ही से ऐसी थी ? माँ ! संसार की वह वस्तु जिसे संतान सबसे पवित्र मानती है, जिसके प्रति हृदय में कभी कोई कुत्सित विचार नहीं उठाना चाहता, वही माँ ऐसी ! विद्या को लगा उसके शरीर में जान नहीं थी । देह में पसीना आ गया था ।

भोर हो गई । माँ का धर्मकर्म देखकर उसे रात की हर एक बात याद आती और हृदय की घृणा भयानक से भमानक होती चली गई । माँ मंदिर गई तो पत्थर की मूरत-सी बैठी रही विद्या । बाप ने चिलम के लिए आग को हेला दिया, किन्तु वह चौथी बार ही सुन सकी । बाप बड़बड़ाया : ‘क्या लड़की है । बाप का काम भी नहीं कर सकती । एक इसकी माँ है जिसने

आवाज देने के पहले सारे काम हाज़िर करके धर दिये ।’

विद्या प्रतिरोध न कर सकी । उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह कहे तो क्या कहे ।

संझा हो गई ।

माँ ने तुलसी के थाँवले के पास दीपक सँजोकर रखा और आकाश की ओर देखकर कहा : ‘शायद होगी बरखा विद्या । तेरे दादा खेत की ओर गये हैं । मैं कहना भूल गई । घास नहीं है भैंस को । जा तू काट ला ।’

विद्या ने खुरपा ढूँढ़ा । नहीं मिला ।

‘अम्मा खुरपा कहाँ है ?’

‘अरे खुरपा तो ले गयी है बिसंवर की भाभी । अभी तक दे नहीं गई । तू गँडसा ही ले जा । जल्दी कर ।’

विद्या दरांत लेकर उठी तो माँ ने कहा : ‘अरी हाँ ! मैं तो भूल ही गई, वह आले में परसाद रखा है । ले ले, थोड़ा मुझे दे दे ।’

विद्या ने घृणा से उसे उठाया । माँ ने एक टुकड़ा मुँह में रखकर कहा : ‘खाले और जल्दी जा ।’

हवा चलने लगी थी । गाँव के छोर तक पहुँची कि एक मस्ती-सी छाने लगी । जी किया उचंग भरी चाल से चले । पर सोचा, लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे । सिर में जैसे एक मीठी-मीठी घुमेर छा रही थी । गला सूखा-सूखा-सा लगने लगा था । बाजरे के खेत शुरू हो गये थे । हवा की दुलारभरी थपेड़ में आँचल गिर गया, विद्या गुनगुनाने लगी मस्ती से, आँखों में तरेर भरे ; होंठों पर हँसी फूटी पड़ रही थी । गाँव में बरातों के साथ बजने वाले लौडस्पीकर से सुना था चूड़ी वाले बाजे का गाना, न जाने किस बंधन को तोड़कर उसके मुँह से फूट निकला :

अँखिया मिला के, जिया भरमा के

चले नहीं जाना, ओ चले नहीं जाना...

मन ने कहा—अरे कोई सुन न ले। वह विधवा है। क्या कहेगा कोई !
अरे सुन लेगा तो क्या कर लेगा ! कैसी प्यारी हवा चल रही है। पारसाल
इन्हीं दिनों की बात तो है जब अमराई में कोयल बोली थी तब वे...

ओ चले नहीं जाना...

विद्या डगमग चाल से चल रही है, आँचल की सुधि नहीं...चारों
ओर घना बाजरा...

हलक सूख रहा है...अंधेरा घिरता आ रहा है...

कौन है यह...

रामभरोसे...

‘हाय तू कैसे आया...’

वह नाराज होना चाहती है, मगर निगाहें तिरछी हो गई और वह
मुस्करा रही है, डगमगा रही है...

रामभरोसे सँभालकर बिठा लेता है और रबड़ी का दौना उसके हाथ
पर है...

उसके खुले सिर की लट पीछे सरकाकर कहता है—‘ले यह खाले...’

उसके हाथ में रबड़ी का दौना देता है...

वह नहीं खाती...

‘नहीं...नहीं खाऊँगी ...’

‘तुझे मेरी कसम...’

वह अपनी गोरी उँगली से चटाता है। उसके हाथों में फूलों का गजरा
है...उसमें से बड़ी मीठी सुगंध आ रही है...

वह सूँघती है...उसे अच्छा लगता है, अधभुकी पलकों वाली आँखों
से उसकी ओर देखती है। रामभरोसे कहता है...तू मेरे सपनों की रानी
है...तेर लिये मैं जान तक दे सकता हूँ...

रामभरोसे की उँगली रबड़ी चटाती जा रही है...बड़ी मीठी है

वह...गले में तरावट-सी आती जा रही है...कहीं स्त्रियों की खिलखिलाहट की-सी आवाज सुनाई देती है...पलक झपकते वह देखती है रामभरोसे गायब हो गया है और सामने खड़े हैं दादा, खूनी आँखें, गुस्से से काँपते हाथ-पाँव...

एक झटका लगता है। बूढ़ा हाथ उसका हाथ पकड़कर उठाता है... पसीने से भीग गई है वह...

दादा कहते हैं : 'कुलटा ! मर क्यों न गई तू ? कौन बैठा था तेरे पास...सारी औरतें नाम ले-लेकर हँसती जा रही थीं तेरा...मैंने सुना तो मर गया, मैं तो...देखा तो सच...'

एक और झटका लगा और रबड़ी का दौना नीचे गिर पड़ा।

बूढ़े दादा बड़बड़ाते जा रहे हैं... 'तभी सुसाल को नाम लगाकर आ गई। वहाँ पर कतर दिये होंगे उन्होंने। सोचा होगा यहाँ मौज की छिनेगी। तेरी सतवन्ती माँ सुनेगी तो क्या कहेगी...सारा गाँव थू-थू करेगा अब...'

बेहोश होना चाहती है, मगर ऐसा वह हो नहीं सकती। कुछ बोलना चाहती है, मगर बोल नहीं पाती। अंधेरे की बलिहारी, दादा घर लाकर उसे अम्मा के सामने खड़ी करके चिलाते हैं—'इसने आग लगा दी मेरे मुँह में। कमीन की बच्ची...यार के साथ...'

'छि: छि:', अम्मा आकर उसे आड़ में करके कहती है : 'पागल हुए हो ! लड़की अपनी है। मैं पहले ही कहनी थी। विधवा की आग जाने कब भड़क उठे।'

'सारा गाँव थूक रहा है !'

'कोई नहीं थूकेगा जो तुम न फैलाओगे बात को। अपनी बच्ची है। गलती हो भी गई तो पीना ही पड़ेगा। जाओ बाहर बैठो, मैं हुक्का लाती हूँ। तुम्हें मेरी कसम जो मेरी बेटि से कुछ भी कहा।'

'तू ऐसा कहती है ?'

'न कहूँ तो कलू क्या ? मैंने कहा था कि पुरनविवाह कर दो पर

तब यह न मानी । और अब चली नाक कटाने । पर इसकी नाक हमारी नाक है ।’

दादा चले जाते हैं ।

विद्या थर-थर काँप रही है । माँ हाथ पकड़कर छाती में लगाकर कहती है : ‘सच बता कौन था ?’

विद्या रो पड़ती है ।

वह फुसफुसाती है : ‘बताती नहीं ?’

‘रामभरोसे था ।’

‘तो मैंने तो पुरनविवाह को कहा था । उससे छिपकर मिली क्यों ? और मिली भी तो पकड़ी क्यों गई ?’

माँ मुस्कराती है ।

‘चल, रोटी खाले ।’

विद्या चुप ।

‘खाले, खाले । दादा चुप हो गये हैं । फिर उन्हें गुस्सा आवेगा ।’

दादा की बड़बड़ाहट सुनाई दी : ‘तेरी कोख से ऐसी ने जनम लिया । सीता की कोख से यह सूपनखा जन्मी । धन्य हो विधना ! तेरी लीला भी बड़ी बिचित्र है ।’

‘मैं कहती हूँ ।’ माँ ने कहा : ‘अब रहने दो । बाहर जाकर बैठो । लड़की की क्या जान ले लोगे ! गाँव में कोई कुछ कह तो जाये मेरी बिटिया से । सब खबर है मुझे हरेक की ।’

‘तेरे जस का सहारा है फूलबती ।’ बूढ़े दादा ने कहा और बाहर चले गये ।

‘आजा, रोटी खाले ।’ माँ ने कहा ।...

‘खाले ! मैं कहती हूँ ।’

विद्या बैठ गई ।

‘क्यों री, क्या बात थी ? घर से चली थी तब तो ठीक थी । फिर कैसे एकदम इत्ती मस्त हो गई ?’

विद्या रो पड़ी । घुटनों में मुँह छिपा लिया ।

‘बोलेगी नहीं ?’ माँ मुस्कराई ।

‘सच कहती हूँ अम्मा ! पता नहीं जाने क्या हो गया मुझे । सिर घूमने लगा । उस परसाद में कुछ था जरूर !’

माँ का मुख कठोर हो गया ।

‘क्या कही ? परसाद में था ?’

‘रोज रात में जैसे तू दूध में मुझे कुछ देती थी न ? गहरी नींद में सुलाने को । जब मामा पिछवाड़े से आता है ।’

माँ ने जीभ दबाकर कहा : ‘लुच्ची ! मुझे दोस लगाती है ! अभी तेरा बाप सुन लेगा तो हड्डियाँ कूटकर रख देगा तेरी । सारे गाँव की लुगाइयों ने तुझे देखा रबड़ी चाटते । धोखे में मत रहियो । जो मुझे नाम लगाया है तो कूँए में भी जगह न मिलेगी ।’

भयानक हो उठीं उसकी आँखें । प्रतिहिंसा जल उठी । विद्या ने देखा तो काँप उठी । सिर नीचा कर लिया । तब माँ ने धीरे से कहा : ‘तू जागती थी ?’

‘हाँ ।’

‘क्या देखा है तूने ?’

‘मामा आता है तेरे पास ।’

माँ मुस्कराई । कहा : ‘कोई जानता है गाँव में ?’

‘कोई नहीं ।’

‘फिर तुझे खुले खेत की क्या जरूरत थी ! मुझसे कहती तो क्या तेरे लिए रामभरोसे का इन्तजाम नहीं कर सकती थी ! तू विधवा बिना खसम की । मैं विधवा इस कमबख्त बूढ़े को व्याही ।’

माँ ने रोटी में घी चुपड़ा और थाली में डालकर कहा : ‘ले खाती चल । नखरे मत करै ! दुनिया में अकल बहुत बड़ी चीज है ।’

रोटी खाते हुए विद्या ने काँपते स्वर से कहा था—‘पर यह तो पाप है अम्मा !’

‘पाप !’ अम्मा ने धीरे से मुस्कराके कहा था—‘तेरी उमर पर मुझे भी यही लगा था पगली । पर पाप क्या है ? दूसरों के हाथ पकड़ा जाना । बामनों के घर-घर में यह पाप है । कोई कहता है कुछ ? बुढ़े को जवान लुगाई ब्याहना पाप नहीं है ? तुझ जैसी जवान बिटिया को विधवा बनाकर रखना पाप नहीं है ? गूजर, जाट, माली सब में फिर-फिर घर बसता है । उनके यहाँ यह पाप नहीं, बामनों में क्यों पाप है ? तेरा मामा मेरे संग बचपन में खेला था । उसने दो बार मेरी जान बचाई थी । पर वह गरीब था । इसीसे इस कमबख्त बुढ़े को मैं बेच दी गई । यह पाप नहीं था ? द्रौपदी के पाँच खसम थे, वह पाप नहीं था, यह पाप है ?’ वह अजीब तरह से हँसी और कहा : ‘लुगाई पर सारी रोक है, मरद पर नहीं । मैं भी पतबरता थी, पर मुझे किसने इस राह पर डाला ? जो धरम का बिस्तर बिछाकर धरम की चादर ओढ़ता था । उसी ने बताया मुझे सब ।’

‘कौन था वह ?’

माँ मुस्कराई । और कहा : ‘गाँव में है कोई जो मुझ पर उँगली उठा दे । दुनिया पाप ही से बनी है । इसमें जिसका दिखावा जितना बड़ा है, उतना ही बड़ा उसका धरम है । आज तू बदनाम हुई है । कल तू नेकनामी चाहे तो न मिलेगी । कुछ भी कर, मगर दुनिया को ओट देकर कर ।’

विद्या की आँखें आश्चर्य से फट गई थीं । साक्षात् पाप सामने बैठा था विजयी होकर । माँ ने कहा था : ‘अब तू अगर किसी से कहे कि मैंने ही परसाद में तुझे भाँग देकर पहले से रामभरोसे को खेत में भेजा था, तो कोई भरोसा करेगा ?’

विद्या फूट-फूटकर रो पड़ी थी ।

‘तूने मेरा सत्यानास कर दिया डायन !’ विद्या का स्वर उठा था ।

‘अरे तेरा बाप सुनेगा । चुप रह हरामजादी ।’

बाहर से बाप का बड़बड़ाना सुनाई दिया था : ‘ओ लाज-हया मत खो कमीन की बच्ची ! कुछ तो अपनी माँ से सीख । अब चुप रह परमात्मा

के लिये । आँख की काजर से सारी कोठरी तो न पार चुड़ैल !’

‘मैं कहती हूँ ।’ माँ ने कहा था : ‘तुम सोते क्यों नहीं ? बिटिया को जीने दोगे या नहीं ?’

वृद्ध का बड़बड़ाना बन्द हो गया था ।

खाना खाकर उठ खड़ी हुई थी अम्मा और कहा था : ‘चल सोने ।’

आँगन में आई दोनों तो बूढ़े का स्वर आया था : ‘फूलबती !’

‘हाँ जी ।’

‘इसे पास ही सुलाती है न ?’

‘हाँ, तुम सो जाओ ।’

‘हे भगवान ! फूलबती जैसी पतबरताओं के बल पर ही धरती पर धरम टिका है ।’

छत पर दोनों लेटी तो माँ ने कहा : ‘विद्या ! सो जा ! कोई फिकर न कर । मेरे रहते कोई तुझसे कुछ भी नहीं कह सकेगा ।’

विद्या उसके पाँव पकड़कर रोने लगी । रोती रही, रोती रही ।

माँ ने कहा : ‘रो ले, पर धीरे-धीरे रो ।’

‘मुझे मौत आ जाये तो भला ।’

‘उससे क्या होगा ।’ माँ ने लेटे हुए ही कहा ।

‘कलंक से तो बच जाऊँगी ।’

‘मूरख ! लोग कहेंगे पकड़ी गई तो कुलटा मर गई । कुलटा तो फिर भी बनी रहेगी और मरने से भूतनी बनेगी । वह क्या पाप नहीं है ?’

सहसा उसने उठकर उसे भुजाओं में बाँधकर कहा था : ‘सोचती क्यों नहीं ?’

‘क्या सोचूँ ?’

‘यह सोच कि विधवा क्या करे ? तू चाहे तो तेरा पुरनविवाह करा दूँ ।’

‘इसलिये कि तेरा रास्ता खुल जाये, फिर मामा से मिलने को ? यही तो कहा था तैने ?’

‘तुझे मुझसे क्या ! तेरी तो जिंदगी सुधर जायेगी ? बोल, मंजूर है ?’

‘नहीं !’

माँ ने झटके से उसे अलग कर दिया था और कहा था : ‘तो तू यों ही तड़प-तड़पकर मरेगी। यह मत समझ कि तू मेरे रास्ते में रोड़ा बन के मेरी छाती पर मूँग दल लेगी। बेटा है जरूर, मगर तब तक बेटा थी जब तक बच्ची थी। अब तू भी लुगाई है, मैं भी लुगाई हूँ। मुझे दुनिया ने कुचला है धरम की आड़ में, तो मैं भी धरम की मिर्च लोगों की आँख में डालकर सबको कुचलूंगी। जो भी मेरे रस्ते में आयेगा उसे कुचल दूंगी। एक जरा-सी चाल में तुझे मैंने इतना झुका दिया है कि अगर अब भी मेरे कहने पर न चलेगी तो तू टूट ही जायेगी। समझी ? इस धोखे में मत रहियो कि तू मुझे बदनाम कर लेगी। यह याद रख कि ज्यादा नेकनामी और पतबरता बनने चलेगी तो विधवा अंत में बजार में जा बैठेगी। बामनों में इसके अलावा कोई रस्ता नहीं। जिसके जवान बेटा नहीं, उस औरत का मरद के बाद कोई रच्छक भी नहीं। समझी ? खून का घूंट पीले, जिठानी की गुलामी कर ले, मगर कहनावत यही आयगी—अजी कौन जाने कैसी है ? खसम करले मनचाहा, विधवा के लिये भले ही यह पाप हो, पर सबसे छोटा पाप है और रही मेरी बात ? गोदान की गैया हूँ, दूध कहीं देती है वह, चरती कहीं और है।

विद्या नहीं सोच पाई। केवल एक प्रतिहिंसा मन में जगी। घृणा मैं। तो अब बदनाम हो ही गई। क्यों न इसका भी पर्दाफाश करके दिखा दूँ ? इसी ने तो मुझे बदनाम किया है। बहुत डरी हुई बनकर कहा : ‘जो लोगों ने मुझे बदनाम किया ?’

‘पगली,’ माँ ने खुश होकर कहा : ‘बदनाम कौन होता है ? वह जिसके पीछे बल न हो। तेरा मामा ड्रायवर है। गाँव के गुंडे उसकी ठोड़ी में हाथ देते हैं, क्योंकि वह उन्हें माल खिलाता है। बड़े-बड़े नाक वाले उससे डरते हैं, क्योंकि उसके गुंडे पल में किसी को बदनाम कर देते हैं।

जब वह मेरे जस गाता है तो किसकी मजाल है कि मेरी तरफ ऊँगली उठाये। जब तक तेरा मामा मेरे पास है, मुझे किसका डर है। और मेरे रहते तुझे डर किसका !'

तब माँ की असलियत जाँचने को विद्या ने झूठ कहा था : 'अम्मा ! सुसराल में मैं मौज में थी। जेठ था ही, और भी थे। मैंने ससुर को रोक दिया। बस तबाही उसी से आ गई। सोचा था यहाँ बाप बुढ़ा है, माँ सीधी है, मैं मौज करूँगी, पर तूने भी मुझे ब्याह के बंधन में डालना चाहा। तभी मैंने इंकार कर दिया।'

माँ ने प्रसन्न होकर छाती से लगाकर कहा था : 'अरी पगली। ब्याह करले आराम हो जायेगा। फिर जो आज़ादी है वह और कहाँ ? फिर कौन रोकता है ?'

'तो अम्मा, तूने ऐसी आज़ादी देखी है मेरी तरह।' यह कहकर व्यंग्य से हँस पड़ी थी।

माँ ने कहा था : 'मुझसे उड़ने की चाल न चल लड़की। तेरा पता न चलेगा। लाश गायब करा दूँगी।'

'और तू मेरी अम्मा है ! पापिन !' विद्या ने कहा था : 'बदनाम हो लूँगी, मर जाऊँगी। मगर पाप नहीं करूँगी।'

'अभी कहती तो थी।'

'तुझे जाँचती थी। तू जानती है मैं पापिन नहीं हूँ। पाप तुझमें है, मुझमें नहीं। मुझे बदनाम कराया है तूने। फिर भी तू समझती है कि मैं तुझसे डर जाऊँगी ?'

इसी समय एक व्यक्ति ऊपर चढ़ आया था। वह पास आ गया। रामभरोसे !

'देख !' माँ ने कहा था : 'यह कौन आया है ? अभी जगार करती हूँ सब जगह। सबेरे तक तुझे कूँए में डूबने की नौबत आ जायेगी।'

विद्या के रोंगटे खड़े हो गये।

'बोल !' माँ ने फिर कर्कश मगर धीमे स्वर से कहा था।

रामभरोसे खड़ा था ।

विद्या ने कहा था : 'तू चली जा यहाँ से अम्मा ।'

वह नीचे चली गई थी ।

रामभरोसे पास आया था ।

विद्या खड़ी रही थी ।

रामभरोसे ने उसका बाँया हाथ पकड़ लिया था ।

विद्या की देह पसीने से भीग गई थी । उसे लग रहा था, उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया था । रामभरोसे का श्वास उसकी कनपट्टी पर लगा । हठात् वह काँपकर छत पर बैठ गई थी ।

रामभरोसे ने कहा था : 'डरती क्यों है ?'

विद्या को लगा था सब कुछ चक्कर खा रहा था । उसने हाथ से छत को योंही टटोला था । अचानक अंधेरे में ही उसके सीधे हाथ में कोई चीज आ गई थी । वही दराँत था । इसे अम्मा ने ऊपर लाकर डाल दिया था । रामभरोसे और पास आ गया था । अंधेरे में उसकी आकृति स्पष्ट नहीं दीख रही थी ।

दूर कहीं पपीहा बोल रहा था । ठंडी हवा अंग-अंग में एक विष-सा भरे दे रही थी । पास कोई नहीं था, कभी-कभी बादल टकरा उठते थे । हठात् विद्या का हाथ उठा और जोर से दराँत की चोट रामभरोसे के कंधे पर बैठी । वह कराह उठा ।

अंधेरे में ही किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया था और अम्मा फुस-फुसाई थी : 'हरामजादी ! होश कर । क्या कर रही है ?'

और एक सधे स्वर ने कहा था : 'रामभरोसे ! सीधा चला जा हरदेव के पास । वह इलाज करवा देगा । याद रख, जो बात खुल गई तो जान से हाथ धो बैठेगा । और रही यह लड़की ! जो यह तेरी न होगी तो मैं इसकी लाश को चील-कौआओं को खिला दूंगी ।'

लहू टपका था । विद्या आवेश में मूर्च्छित हो गई थी । रामभरोसे चला गया था । जब वह होश में आई, फूलवती सामने दराँत लिये बैठी थी ।

दोनों ने एक दूसरी की ओर देखा ।

विद्या ने हँसकर कहा : 'मार दे पापिन ! लाश चील-कौओं को खिला दे ।'

फूलवती ने दराँत दूर फेंक दिया था, कोने में पड़ी घास पर, और कहा था : 'देखती हूँ, तू जीतती है या मैं ।'

विद्या ने कहा था : 'तू जानती है अम्मा ! तू पापिन है, मैं नहीं । तू मुझसे डरती है । मैंने नाम गँवाया है, लेकिन जान रहते सत नहीं गँवाऊँगी । मैं मानती हूँ कि तेरे साथ जुलम हुआ कि तू बचपन में बिकी और मेरे साथ जुलम हुआ कि मैं विधवा-राँड हो गई, लेकिन पाप पाप है । चाहे कुछ भी हो, पाप पाप ही रहेगा । आदमी से ऊपर देखने वाला एक और है, वह है परमात्मा ! पाप-पुन का फल परमात्मा देता है । यह ठीक नहीं, तो वह भी ठीक नहीं जो तू करती है । आज रामभरोसे को मैंने बदला दिया है, और जरूरत पड़ेगी तो तुझे भी दूँगी पापिन !'

'देखूँगी !' फूलवती ने दाँत पीसकर कहा था : 'बेटी ! तुझे मैंने जना है, तैने मुझे नहीं । देखूँ तू क्या करती है !'

दोनों एक दूसरी के सामने बैठी रहीं । रात यों ही बीत गई ।

सबरे दादा ने आँगन से आवाज़ दी : 'विद्या की अम्मा !'

जीने पर से उतरती अम्मा ने कहा : 'आज बड़े अँधेरे उठ गये ?'

'क्या कहती है वह कमीन की बच्ची ?'

'कुछ नहीं, बिचारी रात भर रो-रो के हलकान हो गई । मैंने बहुत समझाया । गलती हो गई बिचारी से । सुसराल की आदतें हैं यह...'

'क्या कहती हो ?'

'मैंने सब उगलवा लिया है...'

'निकाल दे उसे तू घर से । मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता । अभी निकाल दे उसे...'' दादा आवेश से खाँसने लगे थे ।

माँ ने दादा को सहारा देकर कहा था : 'निकाल तो दोगे । मगर फिर क्या होगा ? किसी कुजात के जा बैठी तो ! कहीं बजार में जा निकली

तो ! वह बदनामी भेल लोगे ?'

वृद्ध को जैसे चक्कर आ गया । वही बैठ गये ।

'तुम फिकर न करो । रोजीना की तरह खेत-क्यार सँभालो । मैं देख लूंगी सब ।'

'घर से न निकलने देना उस हरामजादी को ।'

'तुम मत बोलो । पानी मैं ले आऊँगी कूँए से ।'

'नहीं, खबरदार ! जो वह बाहर निकली....'

'नहीं जायगी वह । पर तुम अपनी बदनामी आप तो यों चिल्ला-चिल्ला-कर न करो....'

दादा की आँखों में पानी आ गया । वे रो पड़े और उन्होंने फूलवती के पाँव पकड़कर कहा : 'अरी तैने बचा लिया ये घर ! कैसी सती है तू, इस घर में जाने कैसे आ गई । मुझ बूढ़े को व्याही गई भी कैसे तूने इतना पत निभाया ! कभी लालच न किया । गाँव की औरतें गहना-कपड़ा माँग-माँग-कर लड़ती हैं, पर तूने कभी जीभ तक न हिलाई....'

'हैं, हैं....' पाँव छुड़ाती हुई अम्मा ने कहा : 'मुझे क्या नरक भेजोगे ? ऐसा अधरम तो मत कराओ मेरे पाँव छूकर !'

जीने के दरवाजे पर खड़ी विद्या ने व्यंग्य से मुस्कराकर माँ को देखा ।

वृद्ध की दृष्टि गई । हतप्रभ रह गये ।

'हैंसती है तू डायन !' वृद्ध ने पास पड़ी भाडू उठाकर मारी : 'तुझे सरम भी नहीं आती कुलटा !'

लेकिन विद्या ने पिता की ओर नहीं देखा ।

भाडू से पिटती रही और माँ की ओर निडर-सी देखती रही ।

आखिर माँ ने भाडू छीन ली और बीच में आ गई ।

कहा : 'तुम्हें लाज नहीं आती । जवान बेटी पर हाथ उठाते हो ! कोई सुनेगा तो क्या कहेगा । चलो बैठो बाहर !'

वृद्ध ने फिर झुककर अम्मा के चरणों पर सिर रख दिया और कहा : 'ओ सावित्री ! इसे धरती क्यों नहीं निगल लेती !'

माँ जबरन पिता को पौरी में कर आई और द्वार भीतर से बन्द कर लिया ।

विद्या कुछ नहीं बोली । स्तब्ध खड़ी रही । घूरती रही माँ को । माँ ने आँसू पोछ लिये और कहा : 'विद्या ! तू मुझे जान से मारकर ही चैन पायेगी !'

ममता के आवेश में उसने उसे छाती से लगा लिया । किन्तु पुत्री हट गई और माँ के नयनों में तब भय समाया था । विद्या स्तब्ध खड़ी रही ।

न जाने क्यों माँ चिल्ला उठी थी : 'खबरदार जो हिली यहाँ से ! टाँगें तोड़ दूंगी । बैठ जा यहीं !'

और वह भयानक हो उठी थी ।

उसने बिटिया को नहीं देखा । विद्या बैठ गई । तब माँ घड़े लेकर चली गई कुंडी चढ़ाके बाहर से ।

पता नहीं कब तक विद्या यों ही बैठी रही । पर जब कुंडी खुली तो घड़े सिर पर लिये अम्मा बड़बड़ाती-सी चिल्ला रही थी : 'हाँ, हाँ, एक-एक की बखिया उधेड़ दूंगी । मुहल्ले की एक-एक की पोल की मुझे खबर है । पनघट का आना छुड़ा दूंगी जो मेरी बिटिया पर दोस लगाती है, समझ लेना । कौन कहना है मेरी बेटी पापिन है । कहने वाली कुलटा है, छिनाल है ।'

घड़े रख दिये थे माँ ने और बैठ गई थी घुटनों पर हथेलियाँ टिका उस पर ठोड़ी रखकर । जाने क्यों उसकी आँखों से आँसू बह आये थे । बेटी वैसी ही बैठी रही थी । गुमसुम । आज माँ ने कुछ नहीं कहा । उठी । चूल्हा सुलगाया । रोटी की । ले जाकर पौरी में कहा : 'आज रोटी लेते जाओ तुम्हीं ।'

बूढ़ा जब रोटी ले गया तो द्वार बन्द कर लिया और बोली : 'विद्या ! कोई उत्तर नहीं ।

'विद्या !' स्वर कुछ भरपिया-सा था ।

'मुझे झाड़ू मारो !'

‘बिटिया ! !’ माँ रो उठी थी ।

‘मुझे भाड़ू मारो !’ विद्या ने कहा था : ‘मैं कुलटा हूँ, मैं बड़ी पापिन हूँ ।’

‘बिटिया !’ माँ ने उसे छाती से लगा लिया था ।

‘हाँ अम्मा ! मैं बहुत बुरी हूँ । सारा गाँव मुझ पर हँस रहा है । कल मैं मस्त हो गई थी न ? कल मैं खेत में रामभरोसे के हाथ रबड़ी खाती पकड़ी गई थी न ? मैं सुसराल की कुलटा हूँ न ? मुझे भाड़ू मारो । लोगों को इतना ही मालूम है । यह तो लोगों की ही दुनिया है । लोगों की दुनिया में लोगों का जानना ही सच है । परमात्मा को इस दुनिया से क्या ? परमात्मा तो मरने के बाद मिलेगा न अम्मा ? वहाँ की वहाँ देखी जायेगी । पर यहाँ मुझे तू भाड़ू क्यों नहीं मारती ! यहाँ तो मैं पापिन हूँ ।’

माँ ने सुना और स्तब्ध खड़ी रह गई । अपलक । क्या था विद्या के स्वर में जो माँ ऐसी डर गई थी । विद्या शायद हँस दी थी । कहा था : ‘माँ ! मैंने दादा के मन को बहुत दुखाया है न ? मैंने उनके विश्वास को तोड़ दिया है । ऐसा मुझे नहीं करना चाहिये था न ? बुड्ढे आदमी हैं । उन्हें नहीं सताना चाहिये था न ? उनका कसूर नहीं अम्मा । मुझे बाहर ले चल । मैं सारे गाँव से कह दूंगी कि मेरे माँ-बाप धरमात्मा हैं । मैं पापिन हूँ । पाप मैंने किया है । मुझे दण्ड दो । उन्हें नहीं । चल अम्मा ।’

फूलवती ने दोनों हाथों से विद्या के दोनों गालों पर थप्पड़ मारने शुरू किये, किन्तु न जाने कैसे वह अपने आप अपने मुँह पर दोनों ओर से जोर-जोर से थप्पड़ लगाती रही, यह शायद विद्या नहीं समझ सकी ।

सात दिन बीत गये । विद्या उठती-बैठती, माँ कहती तो खा लेती, लट रहती । संग जंगल हो आती । पर कोई किसीसे बोलती नहीं । पौरी के भीतर बूढ़े बाप बीमार पड़े थे । और अब वह फूलवती के सिवाय किसीको पास न आने देते । फूलवती की पति-सेवा देखकर सारा गाँव ‘वाह ! वाह !’ कर उठा । बुड्ढा पति थूकता तो फूलवती हथेली में खखार ले लेती । रात को बूढ़ा जब खुद फूलवती को सोने भेज देता तो विद्या

को वहाँ बैठने की आज्ञा मिल जाती। वह वहीं बैठी रहती। बूढ़े पिता उससे बात नहीं करते थे। जब कभी जरूरत पड़ती, कहते—पानी ! कभी—चादर ओढ़ा दे। पर बोलते नहीं। खाँसी भयानक हो गई थी। खाँसने-खाँसते बेदम होकर वे सो ये थे।

रात के दो का गजर बजा।

हल्की-सी आवाज सुनकर वह जाग उठी। छत पर कोई भाँक रहा था। फूलवती आज आँगन में ही लेटी थी। विद्या छत पर चढ़ गई। पास गई।

देखा। हरदेव था।

हरदेव ने आवेश में कहा धीरे से, आँधेरे में वह शायद कुछ पहचान नहीं पाया।

‘फूलो ! यू० पी० सरकार का आखिरी फैसला हो गया। कल से हमारी लौरियाँ बंद हो जाएँगी। मैं लौरी बेचने जाता हूँ कल। कहीं बिक गई तो रुपये लेकर लौटूँगा और तुम्हें मेरे साथ भाग चलना होगा। यह लड़की हमें चैन से नहीं रहने देगी।’

यह कहकर उसने आँधेरे में विद्या को छाती से लगाकर चूम लिया था।

आँधेरे में किसी ने कहा था : ‘कौन !’

‘मैं हूँ अम्मा !’

हरदेव के मुँह से निकला : ‘गजब हो गया ! मैं ब्रेकसूर हूँ फूलो ! मैं आँधेरे में पहचान नहीं पाया।’

‘तू मुझे नहीं पहचान पाया !’ माँ ने बफरी शेरनी की तरह कहा : ‘यों कह, लड़की जवान दिखी तो नया दौना पसन्द आ गया ?’

हरदेव सकते की-सी हालत में पड़ गया।

उसने माँ को भुजाओं में कसके कहा : ‘मेरा विसबास कर फूलो !’

इसी समय जीने पर बूढ़े पिता के कराह कर चढ़ने की आवाज आई—‘हत्यारी ! तू यार लिये छत पर चढ़ी है, और मैं नीचे मर रहा हूँ...’

असीम आवेश...खाँसना...

विद्या ने झपटकर हरदेव को फूलों से अलग करके कहा : 'हट भाग । दादा आ गया...'

हरदेव भागकर कूद गया ।

फूलवती पत्थर हो गई ।

बूढ़े पिता ऊपर आ गये...

'कौन था...ओ कुलटा लड़की...'

भयानक खाँसी ।

विद्या हँस दी...

खाँसी... 'अरे हँसती है रंडी...'

फूलवती ने हाथ पकड़कर कहा : 'चलो नीचे...'

बूढ़ा नीचे उतर चला । पीछे-पीछे विद्या ।

फूलवती ने उसे लिटा दिया ।

बूढ़ा घायल कुत्ते-सा चिल्ला उठा : 'यह हरामजादी...'

'खबरदार !' फूलवती ने फूटकार किया : 'लड़की को कुछ न कहना ।'

बूढ़ा आश्चर्य से देख उठा ।

फूलवती ने कहा : 'लड़की निर्दोष है । पापिन मैं हूँ । मैं जिस हरदेव से भैया कहती थी, जिसे तुम सती-सावित्री समझते थे, वही पापिन थी कि उसने बरसों उसके साथ पाप किया । लड़की का दोष नहीं । हरदेव पापी था जिसने मेरे बाद इस जवान लड़की को देखकर खराब करना चाहा । मैंने ही भंग देकर इस लड़की को पागल कर रामभरोसे के साथ बदनाम कराया था...'

बूढ़े पिता खड़े हो गये । आँखें फट गईं । इतना भयानक आश्चर्य था यह कि वे कुछ कह भी नहीं सके...

विद्या ने कहा : 'माँ ! तू सचमुच सती है । इस पापिन को तूने कोख में रखा इसलिए इसके पाप सब तूने अपने ऊपर ले लिये । दादा के विश्वास को भी इतना बड़ा धक्का लगाने से तू नहीं हिचकी । मैं थी उसकी छाती पर टिकी...मामा के हाथों में...मैं पापिन हूँ...'

‘अब कोई फायदा नहीं,’ फूलवती ने कहा : ‘जिस हरदेव के लिए मैंने इतने पाप किये, जब वही मेरा न रहा, तो मुझे डरने की जरूरत नहीं। सुनते हो,’ उसने पति से कहा : ‘तुम बुझे हो, इसलिए मैंने बचपन का साथी पाकर जवानी के मद में पाप किया और आज तक तुम्हारी और गाँव की आँखों में धूल भोंकती रही...जिस लड़की को तुम पापिन कहते हो, वह तो मेरे कारण पाप की गली में डूबी है...’

और ठाट् दादा लड़खड़ाये। एक भी शब्द मुँह से नहीं निकला। सदा के लिये वे गिरे, ऐसे गिरे कि फिर अपने आप उठने का सवाल ही नहीं रहा।

और तब माँ रोने लगी।

उसने शव को ओढ़ा दिया और कहा : ‘विद्या ! तू मुझे यों नहीं जीत सकती ! हरदेव पर ही हाथ डाल दिया तूने कुलटा। हरदेव मुझे धोखा दे रहा है...?’

वह फिर रोने लगी।

‘मेरी लगाई आग से मुझे ही जला उठी तू !’ उसने कहा।

द्वार पर किसी ने थपथपाया।

विद्या ने खोल दिया।

रामभरोसे था।

‘बूआ, हरदेव भैया कहाँ हैं ?’ फिर लाश देखकर ठिठक गया।

‘दादा हैं।’ विद्या ने रोते हुए कहा।

‘हरदेव भाग गया !’ दाँत पीसकर फूलवती ने कहा।

पड़ोसी आने लगे। रामभरोसे हटकर बैठ गया। सिर पर हाथ रख लिये।

‘चला जा यहाँ से !’ चिल्लाई फूलवती।

भीड़ में रामभरोसे डरकर भाग गया। मर्द आ गये। औरतें आ गईं। स्त्रियाँ भूठे रोने लगीं। यह रिवाज था।

बाहर पंडित रामचरन कह रहे थे : ‘भैया बूढ़े तो थे ही। दमे का

रोग था ।’

फूलवती गम्भीर बैठी थी । अब वह धाड़ें मारकर रोने लगी : ‘हाय तुम कितने भोले थे...मैं पापिन अब रहकर क्या करूँगी...’

विद्या ने रोते हुए कहा : ‘अम्मा ! पापिन तो मैं हूँ । तू पापिन कैसे हो गई !’

औरतें उस समय भी मुस्करा गई ।

फूलवती सहसा खड़ी हो गई । उसकी आँखों से अंगारे-से निकलने लगे । सिर खुल गया ।

उसने पुकारा : ‘रामचरन !’

वृद्ध रामचरन रिश्ते में जेठ लगते थे । अतः चौंक उठे । औरतों ने दौत भींच लिये ।

‘रामचरन !’ वह फिर चिल्लाई ।

रामचरन आगे बढ़ आये ।

‘क्या है विद्या की माँ ! बहू !’ वे घृणा से विकल हो उठे थे : ‘ऐसा क्या हुआ जो तुमने मरजाद तोड़ दी । जिस नाम को तुमने इतने दिन कमाया है वह क्या आज गँवा दोगी ?’

विद्या ने माँ की ओर देखा और कहा : ‘अम्मा ! जिस पिता के लिये तुमने इतने दिन सीता-सावित्री की तरह जिन्दगी बिताई, आज क्या उस नाम को गँवा दोगी ?’

माँ ने देखा बेटी की ओर । बेटी की आँखें निर्भय थीं । स्त्रियों ने फुसफुसा कर कहा : ‘कैसी छिनाल लड़की है जो ऐसी सतवन्ती माँ को सिन्ध्या दे रही है !’

‘हाँ माँ !’ विद्या ने फिर कहा : ‘तुम सती हो । बहुत बड़ी हो माँ । तुमने अपनी कोख से मुझ पापिन को जनम दिया है । देखो माँ ! मेरे दादा तुम पर कितना भरोसा करते थे । तुमने कभी उन्हें कष्ट नहीं दिया । अब तुम उनके बिना कैसे जी पाओगी ? कौन किसी का होता है माँ ! सब सबको छोड़ भागते हैं । मतलब के साथी होते हैं । पर अम्मा !

तुमने मेरे लिये सारी बदनामी अपने ऊपर ले ली । मैं कुलटा ठहरी । मुझे झाड़ू मारो अम्मा ! मैं पापिन हूँ ।’

फूलवती ने अपने बाल नोंच डाले और सिर पकड़कर बैठ गई । स्त्रियाँ ऊँचे स्वर से रोने लगीं ।

रामचरन घबराये-से खड़े रहे ।

हठात् फूलवती उठ खड़ी हुई । इस समय उसके मुँह पर एक विचित्र दृढ़ता थी । उसने कहा : ‘रामचरन ! मैं सती होऊँगी । मैं जिन्दा जलूँगी । इस पति ने मुझे सदा सुख दिया । मैं इसकी सेवा नहीं कर सकी । इस पाप के लिये मुझे भवानी ने आज्ञा दी है कि मैं इसके साथ जिन्दी जल कर मर जाऊँ ।’

भीड़ में से रामभरोसे आगे बढ़ आया और साष्टांग दण्डवत करके बोला : ‘जय हो सती की । ऐसी पवित्तर नारी ही पति के संग सती न होगी तो कलिजुग में धरम कैसे बचा रहेगा ?’

घृणा से फूलवती के नेत्र उमड़-से पड़े, मानो अपमान से वह व्याकुल हो गई हो ।

विद्या प्रतिहिंसा से चिल्लाई : ‘सुनते हो दादा ! अम्मा आ रही हैं । वह ऐसी पवित्तर है कि चिता की आग भी उसे फूल-सी लगेगी ।’

कोलाहल मचने लगा । रामचरन ने कहा : ‘यह कैसे हो सकता है बहू । पुलिस गिरफ्तार कर ले जायेगी ।’

लेकिन रामभरोसे बाहर जाकर चिल्लाया : ‘चलो, चलो । भाग जग गये । फूलवती सती होगी । उस पर भवानी उतरती है ।’

बात बिजली की तरह कौंधने लगी । रामचरन भागे-भागे थाने गये । मगर सिपाही निकले तब, जब हुजूम पंडित गिरिधर के द्वार पर आ गया था और भीतर आवेश में फूलवती हँसती, रोती, चिल्लाती, गाती भूमती बक रही थी—‘तुम जान गये सब...तुम जान गये सब...अब पाप न छिपेगा... भवानी का आदेश है...होय होय री मैया भवानी...आग फूल हो जाय, जो तेरी महर हो जाये...’

श्रद्धालु स्त्रियों ने उसके सामने थाल में सिंदूर और कुंकुम-अक्षत इत्यादि ला धरा था। फूलवती के दोनों हाथ सिंदूर से रंगे थे। माथे पर सिंदूर लगा था। वह शायद पागल हो गई थी...बक रही थी...

‘ओ पापी ! तू हरी-भरी गिरस्ती उजाड़ गया रे जमदूत ! भगवान् तुझे देखेगा ! मेरी बेटी मेरे आगे आई ! ओ पंडित ! भोले पंडित ! तुम सुरग जाओगे। मैं तो नरक जाऊँगी। पर तुम्हारे संग मैं भी चलूँगी। हमारा-तुम्हारा जो जनम-जनम का साथ है...’

सिपाहियों ने थानेदार से कहा। थानेदार ने कहा : ‘यह साले गँवारों का मामला है। भीड़ कितनी है ?’

‘हजूर !’ काले खाँ ने कहा : ‘मैं तो मुसलमान हूँ। मुझे वहाँ न भेजें। अंगरेजी राज की बात और थी। अब वहाँ करीब दस हजार की भीड़ है। वह लौंडा रामभरोसे घी के पीपे लिये बैठा है। रामचरन पंडत जोश में है। सुना है, अभी वह मुसम्मात फूलवती महादेवजी के मंदर में गई और कोई पाव भर भाँग का पिंडा पी गई। बाहर रासलीला के डंडे बजाते नौजवान घूम रहे हैं। पीछे लाश है और फूल-मालाओं में ढँकी जँजकारों के बीच फूलवती चल रही है। लोग-बाग उसके पाँव छूते भाग रहे हैं और औरतें उसकी छाया में बच्चे निकाल रही हैं। हुजूर, मेरी तो सलाह है कि दीरे पर निकल चलें। शाम तक आयेंगे, फिर कारवाई करना ठीक रहेगा।’

सिपाही जुझारसिंह ने कहा : ‘हुजूर, कानून कानून है। फिर आप ठहरे एम० ए० पास, अंगरेजीदाँ। मगर हुजूर, सती की आह बड़ी होती है। जो पलट पड़ी तो बंस नास कर देगी। हुजूर, बुरा न मानिये तो काले खाँ की राय मानें। हमारा क्या। मुलाजिम हैं। सती कौन होती है आज-कल। जो होती है वह तो भवानी का ही क्रोध समझिये। सरकार ख़तरा क्यों मोल लें। बाल-बच्चे आपके भी हैं हुजूर और हमारे भी। यह मुलाजिमत भी उन्हीं की खातिर है...’

दरोगाजी ने कहा : ‘ठीक है, मैं दीरे पर चला जाता हूँ...’

बंसी कहार ने आकर चलती भीड़ में कहा : 'ओ विद्या ! पुलिस नहीं आयेगी ।'

विद्या चिल्लाई : 'अम्मा, तेरा परताप है कि पुलिस भी नहीं आयेगी !'

पुलिस नहीं आयेगी ! पुलिस नहीं आयेगी ! भीड़ में खबर फैली । फिर गाँवों में । जिस समय चंदन की चिता पर बूढ़े दादा की लाश रखी गई नगारे बजने लगे । ब्रैण्ड बजने लगा, जो गाँव के कोली स्वयं ले आये थे :

जब तुम्हीं चले परदेश...

लगा कर ठेस...

'भाई कोई धरम की बजने दो...'

'जय सती ...'

'जय भवानी...'

तुमुल निनाद । आकाश फटने का-सा स्वर ।

विद्या चिल्लाई : 'अम्मा ! देख ! दादा वे खड़े हैं स रहे हैं ।'

और फूलवती निस्तब्ध ! चली जा रही थी वह भूमती हुई । आंखें खून-सी लाल । माथे पर सिंदूर । हाथों में सिंदूर...

जय...

जय भवानी...

भीम गर्जन...

कड़म धम...कड़म धम...

ठाकुरों की बंदूकों हवा में फँस कर रही हैं...

और रासलीला वालों के डंडे आवेश में बज रहे हैं...बीच में बाँसुरी बज रही है...

फिर वज्र निनाद होता है—जय...

भवानी माता की जय...

सती की जय...

पंडित रामचरन ने कहा : 'ओ रे मनसुख ! क्या गजब हो रहा है । यह गिरिधर हमारा खान्दानी है । अभी तो ठीक है, कहीं चिता की आग लगते ही यह फूलवती भागी तो नाक कट जायेगी । सदा-सदा के लिये सिर झुक जायेगा...''

'कहो होताऊ जी !' मनसुख ने कहा : 'फिकर मत करो । चिता के पास घी के भरे तीन कनस्तर लिये गयापा, चिरंजी और संगरामपरसाद, खास खान्दानी पहले से बैठे हैं, मजाल है जो चिता से निकल भागे...''

पंडित रामचरन ने कहा : 'भगवान ! तू ही बचना...'।'

अब भयानक कोलाहल होने लगा ।

रासलीला वालों के डंडे ज़ोरों से बजने लगे...

फिर बैण्ड...

फिर सब खामोश...

एक हहर ब्याप गई ।

सती चिता पर चढ़ गई । भूम रही थी वह फूलवती । कभी हँसती, कभी रोती ।

चिल्ला उठी औरतें : 'पीछे हटा दो इस विद्या को । विधवा-कुलटा कहीं सामने न पड़ जाये सती की आँखों के, भसम न हो जाये...''

विद्या चिल्लाई और हँसी : 'ओ अम्मा ! तुझ जैसी पतबरता का सत भी न देखने दिया इनने...''

उधर उठा स्वर...

जय...जय भवानी माता...

नगाड़े पर चोट...

जोर से बजते बैण्ड...

बड़ी तेजी से फिरकनी खाते रासलीला के जवानों के बजते डंडों की बाँसुरी की तान पर प्रतिध्वनि...

दस हजार की भीड़ का आकाश को छूने वाली गर्जना—

हर हर महादेव...

जय सती फूलवती...

रामभरोसे ने विद्या को पकड़ लिया। विद्या चिल्लाई—‘अम्मा...!’

चिता में आग लग गई...

लोग चिल्लाये : ‘माता...अगली फसल कैसी होगी...!’

कोई बोला : ‘माता...गाम में कभी रोग न आवे...आसिरबाद दे जा...!’

विद्या की आँखें आश्चर्य से फटकर जैसे माथे पर आ गईं।

तभी लगा लपटें चढ़ीं। फूलवती उछली और चिल्लाई : ‘हाय मरी-रे...’ ग्यापा, चिरंजी और संगरामपरसाद के बलिष्ठ हाथों में कनस्तर उठे और धी की तीन मोटी धारें सती पर गिरीं। फट्ट से आग लगी। खाल जल गई और भीम स्वर उठा—‘माता भवानी की जय...!’

हठात् विद्या धाड़ें मारकर रो उठी : ‘हाय अम्मा ! मैंने तुझे जीता जला दिया...हाय अम्मा, तू जब आग से जलकर बिहाल हो गई तो कसा-इयों ने तुझे जबरन जला दिया...’

भीड़ टूटी पड़ रही थी। शोर बढ़ता चला जा रहा था। रामचरन और रामभरोसे धक्के से भीड़ में कहीं के कहीं चले गये। विद्या को एक धक्का लगा कि स्त्रियों पर गिरी और फिर स्त्रियों ने धक्का दिया—‘चल रंडी’ और वह छिटककर दूर जा गिरी...

भीड़ लपक रही थी अंतिम झलक पाने, माता भवानी की—सती की...

हठात् कोई चिल्लाया : ‘पुलिस...पुलिस...!’

भगगी मच गई...जिसको जिधर रास्ता दिखा वह उधर ही भाग चला...दम भर में मैदान साफ हो गया। चिता के पास अकेली विद्या खड़ी थी।

थानेदार ने पूछा : ‘कौन सती हुई ?’

विद्या ने देखा और पागल की तरह कहा : ‘पतबरता...’

‘बकती है...’ थानेदार चिल्लाया—‘एक-एक को ठीक कर दूंगा...’

‘ठीक हो गई थानेदार सा’ब !’ विद्या चिल्लाई और फिर विकराल स्वर से हँसी : ‘मेरी माँ सती हो गई...मेरी माँ सती हो गई...’ वह हँसी और भाग चली...

थानेदार देखता ही रह गया । ज्योंही थानेदार सिपाहियों को साथ लेकर हटा, इधर-उधर छिपी भीड़ टूटी और उसने चिता की राख उठाने का जतन किया...वह सती का जो भस्म था...अभी चिता बुझी नहीं थी...

परन्तु विद्या अब घर आ गई थी । अकेली थी । कोई उसके पास नहीं था । भैंसें भूखी खड़ी थीं । बैल भूखे खड़े थे । विद्या ने देखा, परन्तु कुछ सूझ नहीं रहा था । प्यास से गला चटक रहा था । गिलास नहीं दिख रहा था । पूरा घड़ा झुकाकर मुँह लगाकर पानी पीने लगी और धार बह चली, जिससे भीग गई । बहता पानी जब बैल के पास पहुँचा, आँगन से नौहरे में ढुलक कर तब वह भी चाटने लगा, जो कल तक कुएँ में से खिंची बाल्टी में पीता था ।

बाहर औरतों का टोल गाता जा रहा था :

सती ने ऊँची हाथ उठाय
चिता की लपटन में मुसकाय
कही तब मोकूँ अब डर नाय...

अब भी गाँव में हलचल मच रही थी...

अंधेरा घिर आया था ।

पत्थर-सी बैठी थी विद्या । अकेली ! माँ सती हो गई थी । कोई पास नहीं था । द्वार खुला था ।

जीने पर किसी के पाँवों की आहट हुई ।

‘कौन ?’

सामने आ खड़ा हुआ हरदेव ! बिखरे हुए बाल । भयानक रूप । निस्तब्ध खड़ा रहा वह । भयभीत-सी उठ खड़ी हुई विद्या ।

‘तूने उसे मार डाला !’ सहसा हरदेव ने कहा : ‘मैं लौरी बेच आया हूँ । देख, यह मेरी जेबों में नोट भरे हैं । लेकिन तूने उसे जला दिया ।’

विद्या ने कठोर स्वर से कहा : ‘पापी ! तूने उसे मार डाला ।’

‘मैंने !’ हरदेव क्रूरता से हँसा : ‘मैंने मार डाला ? वह मेरे बचपन की साथिन थी । उसके लिए मैंने अपने को मिटा दिया । एक दिन मैं गरीब था, मेरी जेब में कुछ नहीं था, इसलिये तेरा यह बाप उसे मुझसे छीन लाया था । आज मेरी जेबों में रुपया ठुँसा पड़ा है, लेकिन अब वह चली गई । तू मेरी गोदी में क्यों आई ? तूने उसका दिल तोड़ दिया । मेरा और उसका संसार सुखी था । पाप था या पुनः, पर उस दुनिया में लगन थी, प्यार था, और अब ! अब मेरे लिये इस दुनिया में कुछ भी नहीं है ।’

उसने बढ़कर कहा : ‘तू आई । तूने उसका कहना नहीं माना । नहीं माना अपने धरम के गुरूर में । तूने रामभरोसे को मारा । फिर भी मैंने पाप छिपा दिया, क्यों ? क्योंकि फूलो ने कहलवाया था । वह फूलो मुझ पर भरोसा न करके मर गई । क्यों ? तेरे कारन ! उसे लगा कि मैंने उसे धोखा दिया था । क्यों आई तू मेरी गोद में ?’

विद्या ओसारे की छाया में खड़ी होती हुई बोली : ‘दादा ऊपर आ रहे थे । उन्होंने कभी माँ पर सक नहीं किया । मैं बदनाम थी । वे अम्मा को देखते तो उनके मन को धक्का लगता, इसीलिए मैं आ गई थी आगे । मैं तो बदनाम हूँ ही । मेरा क्या ! परमात्मा जानता है मैं पवित्र हूँ ।’

‘तेरी यह पवित्रता जो है न ? यह ऐसा घमंड है जिसने मेरी दुनिया को अंधेरा कर दिया है । मैंने बहुत पाप किया है और पाप से नहीं डरता मैं । पर अब मैं जीना नहीं चाहता । लेकिन तू जो पवित्र बनी है न ? जिसकी वजह से तैन अपनी माँ और मेरी प्यारी को जिंदा जलवा दिया है, तो उसे मैं आज पाँवों से कुचल कर जाऊँगा, समझी ! इससे बढ़कर पाप मेरे लिये

नहीं, क्योंकि तू उसकी बेटी है, जो मेरी थी। लेकिन तूने माँ को मार डाला, तो मैं तुझ बदनाम को ऐसा कर दूँगा, कि तू अपने आप और अपने परमात्मा के सामने भी सिर न उठा सके...'

वह आगे बढ़ा...

विद्या चिल्लाई : 'खबरदार ! आगे मत बढ़ना...'

वह हँसा... भयानकता से...

'आज मैं तेरा लहू पिऊँगा, आज मेरी प्यारी मर गई है...'

उसने आगे बढ़कर झपटकर विद्या को अपने अंक में कस लिया, विद्या छटपटाई...

'छोड़ दे मुझे...' उसने नोंच डाला उसे...

लेकिन उसकी पकड़ बढ़ गई...

तभी पास पड़ा दराँत विद्या के हाथ में आ गया... दूसरा दराँत।

एक भरपूर हाथ पड़ा गर्दन पर... एक चीख निकली, फिर जैसे घुट गई। होंठों पर झुकते होंठ वहीं ठहर गये... आवाज़ की नली कट गई...

तभी जीने पर रामभरोसे दिखाई दिया...

विद्या पूरे जोर से दराँत पर दराँत मारे जा रही थी... हरदेव की लाश नीचे गिर गई। खून के परनाले बह चले...

रामभरोसे ने देखा और हाथ पकड़ लिया और धीरे से कहा : 'क्यों मारा इसे...'

'मेरी इज्जत...'

रामभरोसे ने कहा : 'दराँत फेंक दे, खून हो गया। पगली पुलिस तुझे पकड़ेगी... भाग चल मेरे साथ...'

'अरे कौन चिल्लाया था यहाँ ?' बाहर किसी ने लालटेन लेकर पूछा।

रामभरोसे अरे बाप रे !' कहकर जीने पर चढ़कर भागा और पीछे के रास्ते से कूद गया...

दस-बारह आदमी भीतर आ गये और दृश्य देखते ही आवाजें उठने

लगीं...खून...खून...दौड़ो •दौड़ो...

विद्या ने दराँत रख दिया और प्यास से सूखे हलक को तर करने को बाकी घड़ा औंधा कर मुँह लगाकर चाट-चाट कर पीने लगी ।

किमी ने भयभीत होकर कहा : 'डायन...'

पानी पीकर विद्या आराम से हरदेव की लाश के पास बैठ गई और बोली : 'देखा ! सती की बेटि हूँ मैं कुलटा ! यह मेरा यार बनने आया था । मेरा घमंड तोड़ने, मेरा परमात्मा लूटने...'

वह विकराल स्वर से हँसी...

भीड़ बढ़ती जा रही थी...

विद्या ने चिल्लाकर कहा : 'यह मेरा मामा है न ? बड़ा कारीगर है, जादूगर !'

वह फिर हँसी...

भीड़ पीछे हट गई...

'अरे पुलिस को बुलाओ, नहीं तो सब के सब घिर जाओगे...अरे किशन...दौड़ियो तो...'

किशन भागा ।

भीड़ कोलाहल करने लगी ।

किसी ने कहा : 'उफ़ कितना खून है, सारी धरती भीग गई...'

विद्या ने सुना और शून्य दृष्टि से देखती बैठी रही, जैसे अब वह न कुछ देख पा रही थी, न समझ ही रही थी.....

खबर बाहर तेज़ी से फैल रही थी...हाय राम ! सती की बेटि कैसी छिनाल निकली है...राम डूब गये राम...

भोर हो गई। मनुष्य के जीवन से निरासक्त सूर्य निकला; वह, जिसने इस धरती के कार्य-व्यापार से कोई दिलचस्पी नहीं। उसी तरह मनुष्य की परवाह न करने वाले पक्षी भी सदा की भाँति आकाश में उड़ चले।

जुझहारसिंह ने कहा : 'कौन है ?'

'मैं हूँ !'

'अरे रामभरोसे !'

वह चौंकने की-सी मुद्रा बनाये खड़ा रहा : 'क्या है ?'

'दरोगाजी हैं ?'

'क्यों ?'

'दरोगाजी को सलाम कह दो।'

'इस बखत ?'

एक रुपया खिसककर जुझहार की जेब में गया।

'देखता हूँ अभी, ठहर जा।' कहकर वह चला गया और लौटकर बोला :
'चल।'

दरोगाजी ने देखा और कहा : 'कैसे आया रामभरोसे !'

'हजूर ! चालान कब होगा पूछने।'

'तुझे क्या ?'

'सरकार ! मैं ही तो मुकदमा लड़ूंगा !'

'मगर यह तो पुलिस केस है !'

'है सरकार ! मगर क्रांतिल बेकसूर है ! आप भी जानते हैं हजूर !'

'तेरे पास पैसा बहुत हो गया है ?'

'नहीं सरकार !'

'तो !'

‘मालिक हैं आप ! मजिस्ट्रेट साहब के यहाँ से चालान सैसनजजी में जायेगा न मालिक ? आप ही बचैया हैं !’

सौ रुपये के दो नोट फिर निकले और दरोगाजी ने कहा : ‘हैं, हैं ! रहने दे !’

रामभरोसे ने घुटने पकड़कर दरोगा के, कहा : ‘हजूर इंकार मत करिये । बस कह दीजिये । आपकी तरफ़ से सब काम हो जायगा ?’

‘हो जायेगा मगर...’

‘सरकार ! मैं और तीन सौ ला दूँगा संभा तक । मेरे पास तो हैं नहीं । उधार लाता हूँ ।’

‘शाम तक आ जाना जरूर !’

बाहर आकर रामभरोसे ने जुझहारसिंह से पूछा : ‘एक बार मिल सकता हूँ उससे ?’

‘इस बखत ?’

‘क्यों उधर है ही कौन ?’

‘फिर भी दरोगाजी नाराज हो गये तो ?’

‘अरे यार, तुम अपने ही आदमी हो !’ रामभरोसे ने पाँच का नोट उसकी जेब में सरकाया ।

जुझहारसिंह ने कहा : ‘भई यार ! तू भी गजब करता है । इसकी क्या जरूरत थी ! तुझे क्या कोई रोका थोड़े ही था । समझाया था । जा ! होशियारी से जाना भीतर ! वहाँ मुंशीजी होंगे !’

‘उन्हें बुला लो बाहर ।’

‘वे क्यों आने लगे ? तूही मिल ले उनसे !’

रामभरोसे आगे बढ़ा ।

‘बंदगी मुंशीजी !’

‘कहो बखुंदार ! कैसे आये !’

‘कुछ नहीं, मुंशीजी के दरसन को आया था !’ पास सरककर कहा : ‘मुंशीजी, जरा उस डायन से मिलना चाहता हूँ ।’

‘ऊहूँ ! यह कैसे हो सकता है ?’

‘आपकी महर हो जाये तो क्या नहीं हो सकता ! आप तो यहाँ के मालिक ठहरे !’ और दस का नोट मोड़कर आराम से मुंशीजी की जेब में उतार दिया गया । मुंशीजी चिहुक उठे : ‘अरे भाई तू तो तंग करता है यार ! हम कहते हैं क्यों अपनी जवानी बिगाड़ता है उससे मिलकर । नहीं मानता तो जा मर !’

मुंशीजी बाहर चले गये ।

रामभरोसे जंगले के सामने पहुँचा । दीवार से लगी बैठी थी विद्या । हथकड़ियाँ नहीं थीं । रामभरोसे मुस्कराया ।

धीरे से बोला : ‘केस अब आगे जा रहा है । जब तक फ़ैसला न होगा तब तक तू जेल में रखी जायेगी । वहाँ इज्जत का कोई डर नहीं । तुमसे मसक्कत नहीं ली जायेगी । खबरदार ! देख, जैसे रात तेरी हथकड़ियाँ खुलवाई हैं, ऐसे ही छुड़ा लाऊँगा तुम्हें । रुपये का जूता बड़ा मज़बूत होता है ।’

केवल एक उत्तर सुनाई दिया : ‘चला जा मेरे सामने से । खबरदार जो मेरे लिये कुछ भी किया ! अभी और बदनाम करना बाकी है ?’

‘तू तो पागल है नादान ! न तब कुछ समझी, न अब ही तुझमें अकल आई । मैं कहता हूँ, जैसा वकील कहे वैसा बयान दीजियो ।’

‘चूल्हे में जाये तू और ऊपर से तेरा वकील !’ विद्या ने फूत्कार किया । ‘मुंह मत दिखाइयो अपना ।’

‘अरे हम तो कहते हैं मान जा, मान जा, और सुसरी सिर पर ही चढ़ी जाती है । ऐसे कौन तुझमें हीरे-मोती जड़ रहे हैं ?’

‘चला जा मैं कहती हूँ !’ विद्या चिल्लाई ।

रामभरोसे अप्रतिभ रह गया ।

पूछा : ‘जाऊँ ?’

‘और कहती ही क्या हूँ ?’

‘फिर तेरा क्या होगा ?’

‘फाँसी ।’

‘तुझे डर नहीं ?’

‘नहीं ।’

‘पगली !’ वह मुस्कराया ।

बाहर से जुझारसिंह ने भाँककर कहा : ‘बाहर ! खबर आई है डी. एस. पी. सा’ब आ रहे हैं । जल्दी !’

रामभरोसे ने इधर-उधर देखा । बोलने का मौका नहीं था । केवल कहा : ‘मैं फिर आऊँगा ! अच्छा !’

और वह बाहर चला गया ।

दुपहर तक रामभरोसे से डी. एस. पी. साहब खुश हो गये । पढ़े-लिखे आदमी थे । पतलून और खाकी कमीज । सिर पर टोप । दाढ़ी-मूँछ साफ़ । तन्दुरुस्त और मज़बूत । दाईं तरफ माँग न निकाल कर बाईं तरफ निकालते थे ।

‘सरकार !’ रामभरोसे ने कहा : ‘सात सौ रुपये दे चुका था । अब यह तय हो गया था कि पुलिस केस को अपनी तरफ़ से कमज़ोर कर देगी । पुलिस वाले समझ गये थे कि दीवाना है । जानते थे कि साले के पास जुए की रकम थी । सो उस्तरा उसकी जेब पर पैना करना लाज़मी हो गया ।’

कुल मिलाकर उस शाहख़र्च ने ग्यारहसौ उन्नीस रुपये ख़र्च कर दिये थे ।

डी. एस. पी. साहब ने सिर पर टोप रखकर अपनी जीप में बैठते हुए कहा : ‘क्या बात है ?’

‘हज़ूर ! छूट जायगी न ?’

‘वह तो अदालत के हाथ की बात है भाई ।’ उन्होंने नर्मी से कहा : ‘पुलिस तो अमन के लिये है । बाकी फ़ैसला और इंसफ़ तो पुलिस के हाथ में नहीं है ।’

‘फिर भी सरकार मालिक हैं ।’

‘सब ठीक हो जायेगा !’ दीवानजी ने ढाँढस दिया । ‘जब सा’ब खुश हैं, और लड़की ने अपनी इज़्ज़त बचाने के लिये सब कुछ किया है, तब क्या

बात है ! और फिर राज कांग्रेस का है तो क्या, ताजीरात हिंद तो अभी मलका विक्टोरिया के जमाने की ही है ! उसमें औरतों पर तो खास रियायत की गई है ।’

रामभरोसे को संतोष हुआ ।

गाड़ी चली गई ।

बड़ी गाड़ी आकर थाने के आगे लगी । वह आई थी विद्या को जेल ले जाने के लिये ।

‘मैं मिल सकता हूँ सरकार ?’ उसने पूछा ।

दीवानजी ने कहा : ‘मिल ले । मिल ले ।’

विद्या बाहर निकली । गम्भीर । कठोर । सब तरफ देखा । इस समय हाथों में हथकड़ी पड़ गई थी फिर ।

उसे गाड़ी में बिठाया गया ।

रामभरोसे आगे बढ़ा । बोला : ‘विद्या !’

विद्या ने नहीं देखा, जैसे सुना ही नहीं ।

उसने करुण नेत्रों से देखा । उस उपेक्षा के अपमान को वह जैसे पी गया । फिर कहा : ‘जा रही है । जा । लेकिन फिकर मत कर । सब ठीक हो जायेगा ।’

विद्या नहीं बोली ।

‘जेल में हिम्मत से काम लीजो !’

‘चला जा !’ वह सहसा चिल्लाई : ‘मैं मरूँगी । तुझे क्या ? चला जा यहाँ से !’

रामभरोसे का चेहरा फक पड़ गया । गाड़ी चल पड़ी । रामभरोसे का सिर झुक गया ।

सिपाही हँस पड़े । रामभरोसे आकर मनसा के सामने सिर झुकाकर बैठ गया ।

‘क्यों ? क्या हुआ ?’

‘कुछ नहीं ।’

‘सबरे तो चहक रहा था । अब कैसा मुरझा गया । धूप में कुम्हला गया ?’

रामभरोसे ने कुछ नहीं कहा ।

‘मिला था उससे ?’

‘हाँ ।’

‘वह जानती है तेरा हज्जार से ऊपर उठ गया ?’

‘नहीं ।’

उसने आश्चर्य से कहा : ‘और तूने कहा भी नहीं !’

‘कहता कैसे ?’

‘अब मुँह खोलकर कहता ।’

रामभरोसे ने उत्तर नहीं दिया ।

‘तो वह बोली तुझसे ?’

‘हाँ ।’

‘क्या बोली ?’

‘चला जा ! मैं मरूँगी । तुझे क्या ! चला जा !’

मनसा हँसा । रामभरोसे आहत हुआ । मनसा ने कहा : ‘हम जानते हैं कि अब तुझे आगे जाना है ।’

रामभरोसे ने कुछ विस्मय से देखा ।

‘हाँ, हाँ’, मनसा ने सिर हिलाकर कहा : ‘यह तो दुनिया का कायदा है । शादी के बाद औरत मरद की गुलाम, मगर जहाँ मुहब्बत हो, वहाँ तो औरत जितने जूते दे, उतनी ही उसकी जीत है । तुझे होड़ जो लग गई है कि किसी तरह वो मान जाये ।’

रामभरोसे उस कठोर सत्य को सह नहीं पाया । उठकर अपनी कोठरी में जाकर पड़ रहा । क्या करे, क्या न करे यही उसे व्याकुल कर रहा था ।

अचानक उसे याद आया ।

विद्या के घर का क्या हाल है ?

संभ्रम हो रही थी। वह उठकर उधर ही निकल गया। देखा द्वार भिड़ा था।

उसे देखकर पंडित रामचरण ने कहा : 'क्यों रामभरोसे ? क्या हाल है ?'

'पालागन 'डितजी ।'

'जीते रहो ! कहो, क्या खबर है ?'

'विद्या ठीक है जेल में पंडित जी ।'

'जेल में ठीक है ? अब ठीक ही होगी और क्या । हरदेव अच्छा आदमी था । मामा कहती थी । परमात्मा की मर्जी है । खैर ! जो होना था सो हो गया ।'

'घर तो खाली पड़ा होगा अब ?'

'अब और यहाँ कौन है ?'

'भैंस, गाय, बैल तो मर गये होंगे ?'

'मरेंगे क्यों ? बैलों को हम चरा रहे हैं । भैंस बंसी को दी है ।'

असल में बंसी के कुछ रुपये निकलते थे, सो पंडित ने उसका कंटक यों काट दिया था।

'चलो, सबका ठिकाना लग गया महाराज !' रामभरोसे ने कहा : 'अच्छा हुआ ।'

'हमारे रहते क्या यह भी न होता ?'

'तो पंडितजी, जेल-फेल मिलने गये या नहीं ?'

'अब बेटा, हम तो बूढ़े हुए । लड़के जानें ।'

'ग्यापा, चिरंजी भैया जायेंगे ?'

'अब वे खुद मुखार-बालिग हुए । मैं उनसे कहूँ जो क्या वे आप अपना भला-बुरा न सोच सकें !'

रामभरोसे ने समझ लिया बूढ़ा खुराट है।

'अच्छा चलूँ पंडितजी !'

'भगवान तेरा भला करे बेटा ।'

रामभरोसे ने सीधे जाकर थाने में दीवान जी को तीन रुपये दिये । रात का वक्त था । पुलिस आई और विद्या के घर के द्वार पर 'सील' लगा गई । पंडित रामचरन ने देखा और लड़कों से कहा । ग्यापा चौंका । चिरंजी भुंभलाया । संगरामपरसाद ने धीमे स्वर से कहा : 'अच्छा ! रामभरोसे हमसे चाल खेल रहा है ।'

पंडित रामचरन ने डाँटा : 'दीवारों के कान होते हैं !'

कहते ह, सूरज की किरन में सात रंग होते हैं जो हम नंगी आँखों से नहीं देख पाते । जब धूप में भाड़-फानूस पकड़ा जाता है तब वह सातों रंगों को दिखलाता है और हर रंग बड़ा खूबसूरत दिखाई देता है । लेकिन जब आदमी को धूप में रखा जाता है तब कहते हैं, उसकी देह सूरज के सातों रंगों को पी जाती है और उसके पाँवों से एक छाया पैदा होती है, जिसका रंग काला होता है । इस काले रंग के अनेक विस्तार हैं, और उन्हीं में से एक होती है जेल । दुनिया में बहुत-से जानवर एक दूसरे को खाकर जीते हैं, मगर इंसान इंसान को खा न जाये इसलिये जेल बनाई जाती है । लेकिन फिर भी आदमी आदमी को खाता है, और पैसे के जरिये खाता है, इसलिये इस जेल में बड़ी-बड़ी अजीब चीजें नज़र आती हैं ।

विद्या के लिये यह नयी दुनिया थी । बाहर से जिस जेल का उस पर इतना आतंक था, भीतर आकर वह भी उसके लिये निहायत मामूली हो गया, क्योंकि जीवन से उसे अब कोई आकर्षण तो था ही नहीं । समस्या यही थी कि वह अभी तक मरी क्यों नहीं थी ।

जो औरतें वहाँ कैदियों की देखभाल करती थीं, वे कठोर थीं और विद्या को एक और अनुभव हुआ । स्त्री भी सत्ता पाकर पुरुष से कम कठोर नहीं होती ।

जो और औरतें थीं, उनके अपने-अपने दुखड़े थे, लेकिन विद्या की जैसे किसी में कोई दिलचस्पी नहीं थी । यह वे औरतें जान गई थीं कि वह कतल करके आई है, अतः वह खतरनाक थी, ऐसा प्रायः हर एक के व्यवहार से स्पष्ट ही प्रगट हुआ, फिर भी किसी में कोई विशेष घृणा

नहीं थी, क्योंकि वहाँ सब ही अपने-अपने सुख-दुःख में व्यस्त थीं, और ऐसे मिलती थीं, जैसे स्टेशन पर मुसाफिर आ मिलते हैं। जेल में भी जब पुरुष मिलते हैं, तब वे मित्र हो जाते हैं, परंतु स्त्रियाँ वहाँ भी एक दूसरे के उतने समीप नहीं आ पातीं।

विद्या जितना ही सोचती, उतनी ही उसे अपने आपसे घृणा होती। परंतु खाती थी, पीती थी, क्योंकि यहाँ रूठने का कोई आधार ही नहीं था। सब काम एक हृदयहीन मशीन की तरह चलता था। और उसने यह जो सुन लिया था कि उसे तो फाँसी होगी, यह एक ओर एक भयानक भय की छाया देने वाली बात थी, तो दूसरी ओर इसने उसमें एक उद्दण्डता भी भर दी थी, कि अब है ही क्या ? अब जीना ही कितने दिन और है। मृत्यु की निश्चित अवधि मनुष्य को ऐसा उदासीन और दुस्साहसिक बनाती है कि वह निर्माण में नहीं लग सकता। शायद परमात्मा ने एक ही अक्लमंदी की है कि इस अति बुद्धिमान मनुष्य को यह नहीं बताया कि वह कब मरेगा। मृत्यु की निश्चित अवधि जान लेने पर उसका यह फल नहीं होता कि जल्दी-जल्दी, जो करना है, कर डालूँ। वरन् यह असर होता कि आदमी कुछ न करके दिन काटता और हर दिन घटा कर कहता—अब क्या करूँ ? जीने में दिन ही कितने बचे हैं।

विद्या की हालत भी यही थी। न वह किसी से बात करती, न स्नेह। मौत को सामने देखने वाला आदमी कब किसी से स्नेह कर पाता है ? नहीं कर पाता, क्योंकि उसे करने की ज़रूरत जो नहीं रह जाती। पर एक बात उसे बार-बार झकझोर-झकझोर जाती थी। उसको जेल में रहना पड़ रहा है, क्योंकि उसने खून किया है। खून बहुत बुरा काम होता है।

परंतु खून उसने किया क्यों ? हरदेव चाहता क्या था ? केवल उसकी बेइज्जती ही तो करना चाहता था। क्या वह उसके सामने झुका देती अपना सिर ? तब जो जिदगी होती, वह क्या किसी मौत से कम होती ? तब तो वह अपने आपको भी नहीं देख सकती थी। कम से कम अब उसके अपने मन में तो कोई डर नहीं था। आदमी न सही, भगवान के

सामने तो वह निर्दोष थी !

हरदेव का रूप याद आते ही घृणा से उसका मन भर जाता । मुट्ठियाँ भिंच जातीं । साथ की कैदिन अनारो कभी-कभी चौंक उठती जब रात को सोते समय विद्या चिल्ला उठती : 'नहीं, नहीं...!'

वह उसे जगा देती और पूछती : 'क्या है ? क्या बात है ?'

विद्या होश में आती तो बैठ जाती और कहती : 'कुछ नहीं अनारो ! कुछ नहीं ।'

जीवन एक क्रम हो गया, जिस पर हर जगह नियंत्रण था, परंतु क्योंकि उसे किसी बात से दिलचस्पी नहीं थी, उसने कुछ भी जैसे अनुभव ही नहीं किया । क़त्ल के मुजरिम और राजनैतिक बंदी में इतना ही भेद होता है कि एक तो जेल को अपने बाहर के जीवन का अंश समझता है, और दूसरा उसे अपने जीवन की सफलता का माध्यम । एक पाँव के बल इस पानी में गिरता है, सदा के लिये डूब जा े को; दूसरा सिर के बल खुद कूदता है, दूर जाकर फिर सिर निकालकर हँसने को । इसीलिये एक जो मिलता है उसे चुपचाप खा लेता है, और दूसरा जेल में भी अपनी रोटी और तन-स्वाह के लिये लड़ता है ।

रामभरोसे शहर आ गया और सीधा जेल पहुँचा ।

जेल के बाहर ही जगह थी जहाँ कैदियों के मुलाकाती आकर इन्त-ज़ार कर सकते थे । हफ़्ते में एक दिन मुलाकात होती थी । आज वही दिन था । तरह-तरह के लोग अपने-अपने घर के लोगों—यानी कैदियों से मिलने आये थे, लेकिन क्योंकि रामभरोसे कहानीकार नहीं था, उसने सबको केवल एक उड़ती नज़र से देखा और एक किनारे बैठकर पहले आराम से बीड़ी पी । पान-बीड़ी बेचने एक अधेड़ औरत वहाँ आ जाती थी, डलिया में खोम्चा-सा लगाये । वह आने-जाने वालों का एक तरह का 'इन्क्वायरी ऑफिस' थी ।

रामभरोसे ने उससे एक सिगरेट खरीदी और कहा: 'क्यों अम्मा ! अब मुलाकात कब होगी ?'

औरत को अम्मा शब्द पसन्द नहीं आया। वह अभी तक अपने को जवान समझती थी। बोली : 'अरे क्या तेरी अम्मा अभी तक जवान है ?'

'अरी भाभी !' रामभरोसे ने हँसकर कहा : 'इतना भी मजाक न करने देगी ?'

'मजाक और मुझसे ?' औरत ने कहा : 'वा रे ! कौन है यहाँ तेरा ?'

रामभरोसे सहसा उत्तर नहीं दे सका। एक बार विचार आया झूठ कह दे—बूढ़ है। परन्तु उसकी पत्नी जेल में हो, यह विचार उसे अच्छा नहीं लगा। हर एक को तो वह वास्तविकता समझा नहीं सकता था।

बोला : 'मेरे गाँव की एक लड़की है।'

'यहाँ कैसे आई ?'

'बिचारी से कतल हो गया।'

'कतल हो गया ! कतल कर आई और तेरी नजर में वो बिचारी ही बनी रही ! हाय रे जमाने !'

'तो उसने तो अपनी इज्जत को बचाने को किया।'

'अरे लाला ! तू क्या जाने ! औरत की जात बड़ी चालाक होय। पहले तो खुद बुलावै और फँस जाय तो यार को पिटवावै और आप ऐसी अलग हो जावै जैसे कभी उसे जानै ही न थी।'

'नहीं, नहीं', रामभरोसे ने कहा : 'यह बात नहीं है भाभी !'

'तो नहीं होगी, पर तू क्यों पूछै ?'

'मिलना है मुझे !'

औरत को विशेष दिलचस्पी तो थी नहीं, धीरे से कहा : 'देख वह सिपाही है न ? जरा उसे खुस कर दे। वह तेरा सब काम कर देगा।'

रामभरोसे उठकर उधर चला तो औरत ने अपने पास के लोगों से कहा : 'आजकल के लौंडों को जाने क्या हो गया है कि पालने में से प्यार की बातें सीख जावै। होगी इसकी अम्मा ! वो तो बैठी होगी उधर और बेटा तीसमारखाँ यहाँ ऐसी को भोली कहते डोल रहे हैं, जो खून करके आई है !'

पर दिलचस्पी किसी ने नहीं ली। सबको ही कुछ न कुछ रोग हो तो प्रायः एक दूसरे में दिलचस्पी नहीं रहती। हमदर्दी इतनी रहती है कि हाय बिचारा, हम जैसा ही दुखियारा है।

रामभरोसे ने जमादार को सलाम किया और उस धिसे हुए रामभरोसे के चाँदी के रद्दे ने तुरन्त जमादार को ही नहीं जेलर तक को उसपर मेहर-वान बना दिया।

जेलर सा'ब कैदियों से सिंचने वाले बाग़ में टहल रहे थे। मुंशीजी ले गये रामभरोसे को वहाँ।

‘सरकार ! वैसे तो आपके राज में क्या डर है; मगर सरकार, हुकुम हुआ तो अरज है कि उसे कोई तकलीफ न हो।’

‘अरे हम तो किसी को तकलीफ़ देते ही नहीं।’ जेलर सा'ब ने कहा। ‘और फिर सुपरिण्टेंडेंट साहब तो विलायत में पढ़ आए हैं। हम तो जेलों में कैदियों को सजा देने की नीयत से नहीं रखते, बल्कि उन्हें सुधारने की कोशिश करते हैं, ताकि वे जेल से छूटकर अपनी जिंदगी सुधार सकें।’

‘हजूर का यही जस सुनकर आया था। तो हजूर, क्या सपरडेंट साहब के भी दरसन कर सकता हूँ।’

‘अरे वह इतना आसान काम नहीं, हाँ बख्तावरसिंह !’

बख्तावरसिंह—सफलता की कुंजी थे। बोले : ‘हजूर !’

‘इसे ले जाओ और मुलाकात करा दो। और देखो, जमादारनी से भी कह देना। किसी चीज की अगर उस लड़की को जरूरत हो तो इससे लेकर पहुँचवा देना।’

‘जी सरकार !’

‘सरकार तरक्की करें।’ झुककर रामभरोसे ने सलाम करके कहा।

बख्तावरसिंह ने कहा : ‘लो हो गया तुम्हारा काम। मगर जमादारनी बड़ी काइयाँ औरत है !’

‘कोई बात नहीं जमादार !’ रामभरोसे ने कहा : ‘जहाँ तुम जैसे

देवता आदमी हैं, वहाँ मुझे क्या डर है ! तुम तो हुकुम देते चलो ।’

जेल में पहुँचने पर उसका मन एक बार नये आवेश से भर गया । विद्या को सामने देखकर उसे लगा जैसे वह उसके बहुत पास आ गया था । विद्या यहाँ कुछ और ही दिखाई दे रही थी । और भी कैदी थे, जिनके साथ रहकर उसे अपने दुःख में सात्वना जो मिली थी, उसने उसे एक धैर्य दे दिया था ।

विद्या ने उसे कुंचित भ्रू करके देखा और कहा : ‘क्या है ?’

रामभरोसे को क्या कहना था, वह सब भूल गया । केवल भेंपा-सा बोला : ‘मिलने आया था ।’

धीमे से कहा, ताकि कोई सुन न ले । जहाँ वह रिश्त देकर पहुँचा, वहाँ उसे यह भी आत्मसम्मान का ध्यान था कि कहीं जमादार यह न जान ले कि जिसके लिये उसने जेब कटाई है, वह उसकी परवाह ही नहीं करती । किन्तु जमादार का ध्यान इधर नहीं था । वह कुछ और कैदियों से बातें कर रहा था ।

विद्या ने स्वर उठाकर कहा : ‘मिल लिया ?’

‘अरी धोरे बोल परमेसरी !’ रामभरोसे ने अनुनय किया ।

‘क्यों ?’

‘कोई सुन लेगा !’

‘क्या सुनेगा ?’

‘कि मैं तुझसे मिलना चाहता हूँ और तू मुझे सबके सामने डाँट रही है । सोच तो सही, इसमें मेरी ही नहीं तेरी भी बेइज्जती है ।’

‘मेरी इसमें क्या बेइज्जती है । मेरी इज्जत ही कौन-सी है । जो होनी थी, सो तो होली । अब तो मरना बाकी है ।’

‘किसने कहा तू मरेगी ?’

विद्या चौकी ।

‘हाँ मैं ठीक कहता हूँ । तू नहीं मरेगी !’

‘फिर ? जेल होगी जनम-जिंदगी की ।’

‘नहीं, तू आजाद हो जायेगी।’

‘अब भी सतांना बाकी है जो तू मुझे चिढ़ाने आया है ? मैंने कतल किया है !’

‘मुझे बताने की क्या जरूरत है। मैं तो जानता हूँ। लेकिन कानून भी कुछ है।’

विद्या नहीं समझी।

‘तू नहीं समझेगी। औरत है न ? यह बातें तेरी अकल के बाहर की हैं। कानून कहता है कि औरत अगर अपनी इज्जत बचाने के लिये कतल भी कर दे तो कोई हरज नहीं। बस, यह साबित होना चाहिये कि उसने इज्जत बचाने को कतल किया है।’

विद्या क्षण भर स्तब्ध रही। फिर कहा : ‘पर यह होगा कैसे ?’ और जैसे याद आ गया : ‘होने की ऐसी जरूरत ही क्या है ?’

‘होगा क्यों नहीं ? गवाह भी तो कुछ होता है ?’

‘मेरा गवाह कौन है ?’

‘परमात्मा।’

‘तो परमात्मा मेरे लिये अदालत में आयेगा ?’

रामभरोसे हँसा : ‘न आयेगा तो अपना दूत भेजेगा। मैं गवाही दूँगा। कहूँगा कि फूलो और हरदेव में नाता था। और...’

‘खबरदार !’ विद्या ने फूटकार किया।

‘क्यों ?’

‘अम्मा को बदनाम मैं कराऊँगी, अपने लिये ? वह तो सती हो गई। अब मैं उसका नाम बिगड़वाकर अपना नाम संवाळूँ ? मेरा क्या है ? विधवा हूँ। यहीं मर गई तो भी रोने वाला कौन है ?’

रामभरोसे ने कहा : ‘तू घबराती क्यों है ? तू समझती है लोग मानेंगे नहीं, मगर मेरी जेब में अब भी फूलो की लिखी चिट्ठियाँ हैं। मैं उन्हें अदालत में जज के सामने पेश कर दूँगा।’

विद्या सोचती रही। फिर कहा : ‘नहीं, तू ऐसा नहीं करेगा।’

उसने सिर हिलाया ।

रामभरोसे खीझ उठा ।

‘मैं जरूर करूँगा ।’

‘तू नहीं करेगा !’

‘क्यों न करूँगा मैं ? मैं तो इन्हें वकील को दिखाने ले जा रहा हूँ ।’

‘तुझे मेरी कसम है जो तैने ऐसा किया !’

रामभरोसे स्तब्ध खड़ा रहा, अडिग । फिर उसने कहा : ‘अच्छी बात है । नहीं दिखाऊँगा । पर अदालत में लाऊँगा । अगर तू कहेगी तो दिखा दूँगा ।’

विद्या नीचे देखने लगी थी ।

रामभरोसे ने सोचते हुए ही कहा : ‘इससे काम बहुत आसान हो जाता ! खैर ! अब दूसरा तरीका अपनाना होगा, वैसे पुलिस तो अपना केस आप बिगाड़ देगी । और पुलिस केस है ही क्या ? मैं गवाही दूँगा ।’

‘क्या कहोगे ?’

‘जो मन आयेगा ।’

वह आशंकित हुई ।

‘तुम मुझे बताते क्यों नहीं ?’

‘तू पूछ मैं बता दूँगा ।’

‘पूछती तो हूँ ।’

‘कहूँगा जब कतल हुआ था मैं मौजूद था । तभी मैं सदर दरवाजे से घुसा था और कह दूँगा, मैंने क्या देखा । कहूँगा कि मैं जब तक रोकता-रोकता, तबतक तो सब काम भी हो गया । तब मैं चिल्लाने लगा और भागकर थाने जाकर पुलिस को लाया । और पुलिस कहेगी—ग्रह ठीक है ! यह आया था । फिर पुलिस की जिरह करेंगे कोर्ट सा’ब (सरकारी वकील—कोर्ट इन्स्पेक्टर) और उससे यह जाहिर होगा कि हरदेव ने मुझे पाला था । तब तेरा वकील मेरी ईमानदारी पर जोर देगा और...

उसने झुककर कहा : ‘जज ! हजार, दो हजार...तीन हजार जब

ले लेगा तब फैसला वही लिखेगा जो मैं चाहूँगा । समझी !'

विद्या ने विस्फारित नेत्रों से देखा ।

रामभरोसे ने अकड़कर कहा : 'हाँ ! डरना नहीं । और घबराना नहीं । मैं मौका मिला तो फिर आऊँगा । समझी ?'

जमादार ने कहा : 'टैमप !' (टाइम अप)

'अच्छा अब टैम हो गया । चलता हूँ । अब तो मुझसे गुस्सा नहीं है न ?'

वह उत्तर न दे सकी । जमादार ने कहा : 'जल्दी करो, जल्दी !'

रामभरोसे पीछे हट गया । फिर वे सब चले गये और कैदी पीछे रह गये ।

विद्या देखती रही । देखती रही । कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था, कि वह सब क्या-क्या कह गया था । आखिर वह चाहता क्या था ।

रामभरोसे को देखकर वकील साहब चौंक उठे । उन्होंने सिरगेट मुँह से लगाकर सुलगाते हुए कहा : 'अरे ! तुम कैसे आये ?'

'आपकी मदद के बिना काम नहीं चलता वकील सा'ब, इसी से खिदमत में हाजिर हुआ हूँ ।'

वे बैठकर बोले : 'बैठो, बैठो ! ऐसा कौन-सा मामला आ गया ?'

'आप तो वकील सा'ब उस दिन वहीं थे ।'

'किस दिन ! कहाँ ?'

'सरकार गाँव आये थे जब विद्या ने कतल कर दिया था !!'

उसने याद दिलाया ।

'हाँ, हाँ, मगर उससे तुम्हें क्या हुआ ?'

'अब पैरवी तो करनी ही है न ?'

'पुलिस के खिलाफ ?'

'पुलिस बड़ी दयावान है हज़ूर ! जैसी पुलिस की नजर है, अब ज़रा आप भी वैसी ही नजर करके कचहरी में खड़े हो जायें तो क्या नहीं हो सकता !'

'मगर हरदेव तो तुम्हारा...'

‘हाँ हजूर, उसने मुझे पाला था ।’

‘फिर उसी के खिलाफ लड़ोगे तुम ?’

‘उसके खिलाफ कहाँ हजूर ! वह तो अब है ही नहीं । और फिर विद्या का दोस भी तो नहीं है ।’

‘मगर सबूत क्या है ?’

‘मैं रहा हजूर ।’

‘तुम अकेले हो ! और भी कोई है ?’

‘दस-दस के पाँच नोट निकालकर उसने सामने रखते हुए कहा : ‘अब हजूर, इस बखत तो मैं ही हूँ । परमात्मा क्या ऐसी जगह सबको भेजता है । और आपकी जिरह से तो बड़े-बड़े हाकिम काँपते हैं वकील सा’ब...’

‘बड़ा मुश्किल केस है...’

‘हजूर, अभी तो और आसान होगा,’ रामभरोसे ने कहा : ‘आप पेशियों की फिकर न करना !’

‘खैर !’ वकील साहब ने कहा : ‘बेगुनाह औरत के लिये तो खड़ा होना ही पड़ेगा । आखिर कानून है ही दूध और पानी को अलग-अलग करने के लिये ।’

रामभरोसे ने उनके पाँव पकड़ लिये । और कहा : ‘बस हजूर, अब मैं नहीं डरता ।’

सरकारी वकील माधोनारायन जो कोटसा’ब के नाम से विख्यात थे, उन्होंने शहर के बाहर सिविल लाइन में एक बँगला बना लिया था । अभी उन्होंने नल नहीं लगवाया था । अतः खड़े हैंड पम्प चला रहे थे । उनके बारे में ऐसा प्रसिद्ध था कि अपने मातहतों से नाजायज काम कभी नहीं लेते थे, बल्कि खुद अपना काम करते थे । अगर उनके सिपाही ने ज्यादा जोर दिया तो भैंस की सानी तो उससे करवा लेते थे । मगर दूध खुद काढ़ते थे ।

रामभरोसे ने सलाम किया तो बोले : 'कौन हो ? क्या चाहते हो ?'

रामभरोसे दबक गया । बोला : 'सरकार एक अरज थी ।'

'कहो, कहो ।'

'कहते डरता हूँ सरकार !'

'यहाँ कोई नहीं है । डरो मत । कहो !'

रामभरोसे ने तुरंत उनके पाँव पकड़ लिये ।

वे बोले : 'हैं, हैं...क्या करता है...!'

'हजूर माई-बाप हैं...!'

'अरे क्या बात है, कुछ कह तो सही । कमबख्त से जाने किसने कह दिया कि मेरा दिल पुलिस वालों की तरह सख्त नहीं है ।'

'यही जस सुनकर आया था हजूर ! तर जाऊँगा । सात-सात जनम तक गुन गाऊँगा ।'

'उठ ! मगर मैं धरमहार नहीं होता !'

'सरकार ! विधवा का सवाल है । बेकसूर है । पुलिस केस है सरकार ! गाँव के दरोगा जी से पूछ लें । उसने इज्जत के लिये किया जो कुछ किया । अब आप चाहें तो सब कुछ हो सकता है ।'

'वह कैसे भाई ! मुकदमा है तो जिरह तो करनी ही पड़ेगी ।'

'मालिक !' उसने उनके चरणों पर दस-दस के नोटों की चार गड्डियाँ निकाल कर रख दीं और कहा : 'अब हजूर ! आप हैं और भगवान है । मेरे पास बस यही चार सौ हैं । आप फकत धरम की बात कर दें हजूर ! फिर सब हो जायेगा । ऊपर परमात्मा भी तो देख रहा है !'

'इन्हें उठा, उठा...!'

रामभरोसे ने उठाके उनकी पतलून की जेब में गड्डियाँ डाल दीं और उनके हाथ पकड़ के कहा : 'हजूर मर जाऊँगा । ब्रेवा की आह है । उसका कोई नहीं । आप जिरह करेंगे तो यह न भूल जायें सरकार ! कतल करते किसी ने नहीं देखा सरकार ! औरत की इज्जत का सवाल है । अगर वह फाँसी पर चढ़ गई तो कोई औरत फिर इज्जत के लिये

नहीं खड़ी होगी सरकार ! सब तरफ पाप ही पाप फैल जायेगा ।’

माधोनारायनजी ने बड़ी दया से कहा : ‘सचमुच ! ऐसी बेकसूर है ?’

‘अब मैं क्या कहूँ हजूर !’

‘तो थाने के दरोगाजी को समझा देना ।’

‘हजूर, वे तो तैयार हैं । उन्हीं के हुकम से तो आया हूँ सरकार ।
डी० एस० पी० साँब तक जानते हैं ।’

‘तो फिकर मत कर । जब सब ही उसकी तरफ हैं तो छूट जायेगी ।
ऐसी औरतें हैं, तभी तो अभी तक मुल्क में औरतों की इज्जत कायम है ।’

‘धरम बोलता है मालक ! धरम बोलता है ।’ रामभरोसे ने हाथ जोड़कर कहा ।

शहर का काम करीब-करीब समाप्त हो चला था । अब एक मुहिम और थी । रामभरोसे पत्रकार महोदय के सामने पहुँचा । वे अपने दफ्तर में बैठे प्रूफ देख रहे थे । देखते ही पहचान गये और मुस्करा कर कहा : ‘अरे रामभरोसे ! कैसे आये ?’

‘बाबू जी’, वह नीचे बैठने लगा कि वे बोले : ‘अरे ! अरे ! नीचे नहीं । यहाँ कुर्सी पर बैठो । यहाँ कोई ऊँच-नीच नहीं । यहाँ सब बराबर हैं । हमारा अखबार नाम से ही ‘लोकहित’ नहीं, काम से भी है ।’

‘नहीं बाबूजी, मैं यहीं ठीक हूँ । इतने पढ़े-लिखे बिदवान हैं आप ! आपके सामने बैठते क्या अच्छा लगूँगा ?’

‘हमारा अखबार पढ़ते हो न ?’

‘बाबूजी । सारे गाँव में मैंने ही इसे फैलाया था । पहले—‘जनपंच’ जाता था, मगर उसमें गरीबों की बात नहीं थी बाबूजी ।’

‘हमारे पत्र में तो है ?’ पत्रकार महोदय ने दाँत निकालकर, सिर हिलाकर पूछा ।

‘एकदम बाबूजी ! कलम का जोर बड़ा जोर है बाबूजी । साँच को आँच क्या ? बड़े-बड़े काँपते हैं लोकहित से । मैं तो रोज देखता हूँ । जब

वो सट्टेबाजों की खबर छपी थी तो खलभली मच गई। पुलस भी डरती है आपके अखबार से।'

पत्रकार महोदय ने गर्व से कहा : 'हम किसी से डरते नहीं राम-भरोसे। जो सच होता है छाप देते हैं। चाहे कोई बुरा माने, चाहे भला। कलकटर तक कुड़कुड़ाया करना है। अरे हम तो नेताओं को भी नहीं छोड़ते !'

वे हँसे और चुटकियों से पकड़कर पाजामा घुटनों पर जरा ढीला कर लिया।

'क्यों नहीं बाबूजी ! परसों ही की तो बात है, मुँसी जी मिल थे तहसील में। बड़े घबराये हुए थे। आपको कहती-अनकहती कह रहे थे।'

'अरे !' पत्रकार महोदय ने हँसकर कहा : 'हम साहित्य का सृजन करते हैं। हमारा दैनिक आदर्श है।'

'बाबू जी यह तो बड़े दिमाग का काम है ?'

'दिमाग ! शाम को उठते हैं तो लगता है कि निचुड़ गये हैं।'

'मगर बाबूजी गन्ने का-सा रस भी तो निकल आता है आपमें से। क्या बात है ! दिमाग बड़ी चीज है !'

'अरे हम तो कविता भी लिखते हैं।'

'नहीं बाबूजी !' उसने आश्चर्य से कहा।

पत्रकार महोदय फिर लौटे। 'हाँ, तो, कैसे आये ?'

'वही विद्या के कतल के मामले में सहर आया था, कुछ पूछ-ताछ करने।'

'हाँ।' उन्होंने दिलचस्पी ली : 'तो फिर क्या हुआ ?'

'मामला सैसन में गया।'

'वह तो जाना ही था। मगर क्या उम्मीद है ?'

'उम्मीद तो बाबूजी परमात्मा के हाथ है।'

'बड़ा ख़राब जमाना है। भरस्टाचार तो इतना है कि वहा नहीं जा सकता !'

‘अजी बाबूजी पूछो मत !’

‘अफ़सरोँ के मारे नाक में दम था, अब ये नेताओं की फसल और खड़ी हो गई।’

‘ऊँट कटेरी हैं बाबूजी। ऊँट कटेरी।’

‘अच्छा ! तो बरी हो जायेगी ?’

‘अब आपके हाथ है सब कुछ।’

‘चौंके। बोले : ‘यह कैसे ?’

‘कुछ भी छाप दें बाबूजी। आपसे तो भगवान् डरता है।’

‘मगर भाई ! जब तक मामला अदालत में है, और उस पर इंसाफ़ यानी कोई फैसला नहीं हो जाता, तब तक हम कैसे कुछ छाप सकते हैं ?’

‘ऐसे छापने को कब कहता हूँ बाबूजी।’ उसने पास सरककर धीरे से कहा : ‘पुलस के दरोगाजी से मिला था मैं। कहते थे कि भाई ! लड़की तो बेकसूर है, मगर हम कैसे उस पर केस न चलावें।’

‘बिल्कुल ठीक कहते हैं।’

‘ठीक कहते हैं बाबूजी ! यह भी कहते थे कि भाई, कैसी भी बात हो, हम तो सख्ती से पेस आने को मजबूर हैं। न करेंगे ऐसा तो फौरन— बाबूजी ! उन्होंने आपके अखबार का नाम लिया—बदनाम कर देगा वह, बड़ा कसाई है। लिख देगा—मालूम देता है दरोगाजी कुछ खा गये।’

पत्रकार महोदय हँसे। वह बड़ी संतुष्ट हँसी थी।

‘तो बाबूजी ! आपके डर के मारे वे एक बेकसूर का गला घोट देंगे और पाप आपको लगेगा। अब आप अगर यह छाप दें कि दरोगा बड़ी सख्ती से काम ले रहा है, तो सब ठीक हो जायेगा। यह लिख दीजिये कि कहते हैं कि गाँव के कुछ लोगों ने रिसवत भी देने की कोसिस की, मगर दरोगाजी ने कहा : आज़ाद हिंदुस्तान में अब रिसवतों का जोर नहीं चलेगा। तब तो बाबूजी, सायद उस गरीब की जान बच जाये।’

‘भाई !’ पत्रकार महोदय ने कहा, वे सोच में पड़ गये : ‘यह कैसे हो सकता है ! एक बार हम इस दरोगा की ऐसी तारीफ़ लिख

ये, तो कल फिर ज़रूरत पड़ने पर इसके बारे में कुछ और ख़बर कैसे छाप सकेंगे ?’

‘तो बाबूजी ! यों छाप दीजिये कि—इस मामले में सुना जाता है—इसमें तो वो आपकी मुट्ठी में रहेगा !’

‘लेकिन भाई ! अपने पत्र की नीति ऐसी है नहीं !’

‘बाबूजी ! गरीब की जान बच जाये इससे बढ़कर कौन-सी बात होगी ।’

‘अब भाई, ऐसे हर एक के लिये थोड़े ही सोचा जाता है ?’

रामभरोसे के हृदय को धक्का लगा । यहाँ उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे ! परंतु उसे अपने अपमान का तो कोई ध्यान नहीं था । भट से सौ रुपये निकाले और मेज़ पर रखकर कहा : ‘बाबूजी ! एक गरीब की जान बचा दो ! इससे बढ़कर कोई बात नहीं होगी ।’

पत्रकार महोदय सकते की-सी हालत में पड़ गये । फिर नोट छुए और कहा : ‘यह ले जा भाई ! तू भी गरीब है, मैं भी गरीब हूँ । पर पत्र हमारा बड़े संकट में चलता है । कोई अमीर तो हमारे पीछे है नहीं ।’

‘तभी तो बाबूजी ! चरनों में लाकर रखे हैं । गरीब का भाई गरीब ! हाथ ही मुँह तक रोटी पहुँचाता है । रुपये तो रख ही लें, वर्ना मैं समझूँगा, आप मुझसे गुस्सा हो गये हैं ।’

‘अरे नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं । तुम बुरा मानते हो तो लो, मैं रखे लेता हूँ । पर मैं तुम्हारी गरीबपरवरी देखकर खुश हो गया हूँ । जोरदार ख़बर निकलेगी । समझे ! गरीबों के लिये तुम्हारे हृदय में दया है । तुम देश के सपूत हो !’

‘बाबूजी ! आपके चरनों की धूल भी नहीं हूँ मैं तो !’

रामभरोसे का काम अब शहर में पूरा हो चुका था । उसे स्वयं आश्चर्य हुआ कि रुपये में इतना जोर था । उसे घोर घृणा हुई कि दुनिया कितनी नीच थी ! आज वह पवित्रता का अनुभव कर रहा था । आज तक जो वह इन पढ़े-लिखे बड़े आदमियों को ऊँचा समझता था, वह सब सुपना बन

चुका था। वह अपने को व्यर्थ इतना बुरा समझा करता था।

जब वह गाँव पहुँच चुका, मनसा प्रतीक्षा कर रहा था। सारा हाल सुनाकर रामभरोसे खूब हँसा। किंतु मनसा गंभीर था।

‘क्यों,’ रामभरोसे ने पूछा : ‘तू चुप क्यों है?’

‘मैं देख रहा हूँ।’ वह अब भी अन्यमनस्क था।

‘क्या?’

‘सारी गंगा बह जायेगी तो रेत निकल आयेगी।’

‘क्या मतलब?’

‘तू अभी पैसे की कीमत नहीं जानता।’

‘मैं बड़ी कीमत जानता हूँ।’

‘पागल न बन। होश में आ।’

रामभरोसे को मनसा का यह प्रवचन अच्छा नहीं लगा। फिर भी उसने हँसकर कहा : ‘क्या है! सब खतम हो जायगा तो फिर कमा लेंगे।’

‘ओहो, जैसे हाथ की बात है। ईमानदारी से कभी किसी ने रुपया कमाया है? अरे बेटा! यह तो कहो कि भाग की बात थी, जो इतने हाथ लग गये।’

रामभरोसे ने कहा : ‘भाग तो अब चेतगा।’

‘देख रहा हूँ चेता-चिताया धरा है।’

रामभरोसे चिढ़ा। कहा : ‘यार, तू तो बड़ा तंगदिल है।’

‘अच्छी बात है!’ मनसा ने बात को खतम कर दिया।

रामभरोसे ने देखा, शायद उसे बुरा लग गया था। अतः उसने भी फिर कोई बात नहीं की।

सबरे उठकर रामभरोसे फिर निकल पड़ा। डॉक्टर साहब के पास पहुँचा। डाक्टर साहब ने माथे पर बल डालकर याददास्त पर जोर दिया।

रामभरोसे ने कहा : ‘हजूर! मैं वही हूँ जिसके कंधे का आपने इलाज किया था!’

‘अच्छा, तुम वही हो जो उस दिन भूठ बोले थे ।’

‘किस दिन हजूर !’

‘वह क़त्ल हुआ था उस दिन ?’

‘भूठ कैसी ?’

‘तुमने कहा था, दराँत तुम्हारे नहीं लगा था ।’

रामभरोसे हँसा । कहा : ‘हजूर ! जिसके लिये किया, वह तो जेल चली गई !’

डाक्टर ने हाथों की हथेलियों को ऊपर फैलाकर कहा : ‘वह तो होना ही था ।’

‘हजूर ने लिखके तो भेज ही दिया होगा ।’

‘हाँ, सोच रहा था, भेजने ही वाला था । दरोगाजी ने कहा भी था, पर अभी मुझे फुर्सत ही नहीं मिली ।’

रामभरोसे ने जाँच की—‘तो सरकार, हरदेव बहुत घायल हुआ ?’

‘हाँ, हाँ ! ऐसा है कि बिछा पर उसने हमला किया !’

‘यह हजूर ! कैसे पता चला ?’

‘उसके जिस्म पर नाखून गड़ गये हैं ।’

‘आपने देखा ?’

‘उसी दिन मुँह देखा उसका । गर्दन के पीछे साफ़ निशान था !’

‘लिखा दिया हजूर ?’

डाक्टर कुछ तय नहीं कर पाया कि क्या कहूँ । चुप रहा ।

रामभरोसे ने कहा : ‘जनम-जनम याद रखूँगा मालिक ! साँच की बात को आँच नहीं ।’

उसने बिना बोले तीन सौ रुपये मेज़ पर धर दिये । डाक्टर ऐसा घबराया जैसे सरपोटा मेज़ पर निकल आया ।

‘नहीं, नहीं, भाई ! तू आदमी ठीक नहीं है ।’ उन्होंने कहा : ‘पहले भी तूने गड़बड़ कर दी थी । अब फिर परेशान करेगा । डाक्टर लोगों का भला करने को होता है । कानून के दिल नहीं होता, डाक्टर के दिल होता

है। तुम लोग फँस न जाओ, इसलिये हम तुम्हारे भले के लिये, जैसा तुम चाहते हो, वैसा लिख देते हैं। यह तो सब देखते हैं कि डाक्टर को इतना दिया, कोई ये भी सोचता है कि डाक्टर किन-किन बीमारियों की मुसीबत में घिरा रहता है। आखिर हमारे भी तो बीबी-बच्चे हैं। उन्हें कौन सँभालेगा ?'

'तो डाक्टर सा'ब ! वचन देता हूँ। अब फिर कोई बदमासी नहीं करूँगा।'

'ठहर जा !' कहकर डाक्टर ने नोटों की जाँच की। जब उन्हें किसी निशान से अकलंकित पाया, दराज में रखकर कहा : 'क्या चाहता है ?'

'हजूर, लिख दें कि जान और इज्जत बचाने को विद्या ने उसे मारा !'

'किसे ? तेरे बाप को !'

'बाप नहीं था हजूर !' रामभरोसे सकपका गया : 'उसने मुझे पाला था !'

'अबे, पाला था यानी बाप जैसा था। खैर ! मैं लिख दूँगा।' फिर मुस्कराकर कहा : 'है कुछ मामला ? है न ?'

रामभरोसे को डाक्टर की वह व्यंग्यभरी मुस्कान बड़ी ही कुटिल जान पड़ी। डाक्टर ने फिर कहा : 'इश्क है ही ऐसी चीज़ !'

'तो मैं चलूँ हजूर !'

'तू बेफिकर रह।'

'अब जैसी हजूर की दया होगी।'

'हाँ, हाँ, मैं ठीक लिख दूँगा।'

रामभरोसे ने हाथ जोड़ा और तब बाहर हो गया। एक बार मुड़कर देखा और फिर सोचा : 'भली करेंगे राम !' वह सड़क पर आ गया।

गाँव लौटकर बैठा ही था कि ब्रजेन्द्रसिंह भीतर घुसा।

'यार रामभरोसे ! तुम तो अब मिलते ही नहीं।'

'बैठ यार ! बहुत मिला। जरा ऐसे ही चक्कर में लगा हुआ हूँ।'

'क्या चक्कर है, हम भी तो सुनें ?'

‘वही विद्या जेल चली गई है न?’

उसे कौतूहल हुआ : ‘हाँ गई तो है।’

‘बिचारी बेकसूर है।’

उसे आश्चर्य हुआ। शायद गाँव में कोई भी ऐसी बात नहीं कहता था। बोला : ‘यार एक काम है!’

काम रामभरोसे समझ गया, क्योंकि ब्रजेन्दर सदैव ऐसे ही प्रारम्भ करता था।

‘अब मेरे पाम क्या धरा है!’ रामभरोसे ने हँसकर कहा।

‘क्यों?’

‘लुट गया ब्रजेन्दर! लुट गया।’

‘दो रुपये की जरूरत थी। जल्दी लौटा दूँगा।’

‘प्यारे! यह मजाक तो पुराना पड़ गया।’

ब्रजेन्दर को चोट पहुँची। बोला : ‘सच कहता हूँ।’

‘वह कम्बल तो फट गया भैया, जिसमें तिल बँधते थे।’

ब्रजेन्दर निरुत्तर हो गया। फिर भी कहा : ‘पहले तो ऐसे बेरुखे न थे।’

‘तब अपनी गलती मालूम नहीं थी यार! अब वह सब अच्छा नहीं लगता।’

‘सो क्यों?’

‘यों ही।’

‘तो भी।’

‘ऐसे ही।’

ब्रजेन्दर उठ खड़ा हुआ। कहा : ‘कभी तुमने ऐसा न कहा था!’

‘अब शुरू कर दिया।’

‘तुम समझते हो मैं लौटाऊँगा नहीं?’

‘नहीं जी! हाँ, अब तक जो ले गये हो, वह कौन-से आले में धर गये हो बताना जरा। शायद मैं भूल गया होऊँ?’

ब्रजेन्दर ने कहा : 'पुरानी दोस्ती का यह नतीजा है !'

'तो यार ! यह दोस्ती इकतरफा क्यों है ? कुछ तुम भी सोचो ।
आखिर कब तक ! हर दफे एक ही बात ! नहीं, मेरे पास नहीं है ।'

ब्रजेन्दर चला गया, किन्तु उसका मुँह एक भयानक घृणा ले गया ।

रामभरोसे ने बिना उसके बारे में सोचे हुए बीड़ी सुलगाई और फिर उठ खड़ा हुआ ।

बटुकबिहारी कांग्रेसी थे । आसपास नेता माने जाते थे । गेरुआ खादी का कुरता और उसी रंग की टोपी पहनते थे । मूँछें भी साफ रखते थे और पहली निगाह में पुगने आर्य समाजी नजर आते थे, क्योंकि 'नमस्ते' करते थे । 'जै हिन्द' उनके मुँह से सिर्फ अपने से बड़े नेता के मिलने पर निकलता था ।

रामभरोसे को अपने यहाँ देखा तो चौंके ।

'आओ भैया ! कैसे आये !'

'कुछ नहीं महाराज ! आया था यों ही । गरीब की कोई सुनता नहीं ।'

'अभी पुरानी नौकरशाही चल रही है न ?'

'ये बात कही महाराज !' रामभरोसे ने हाँ में हाँ मिलाई ।

'अभी !' कुछ नाक सिकोड़कर बटुकबिहारी जी ने फ़रमाया—
'जनता में उतना जागरन नहीं आया है, जितना आना चाहिये था । कांग्रेस ने आजादी दिलाई, मगर इन नौकरशाहों का खँया अभी तक नहीं बदला । यह तो निकलकर ही ठीक रहेंगे !'

रामभरोसे का सिर घूम गया । इतना सपना खर्च किया था । पूछा :
'निकलेंगे ! महाराज, ये कब तक !'

'अरे ऐसे आसान थोड़े ही है । ऊपर के नेता जब ऐसा स्वीकार करेंगे !'

रामभरोसे का जी में जी आया : 'तो अभी नहीं ।'

'हाँ, कैसे आया भैया ?'

'महाराज ! वो गरीब लड़की थी न विद्या । जिस पर कतल का मुक-

दमा चल रहा है ?' उसने उनकी ओर देखा । पर वे काठ-से दिखाई दिये । बोले : 'रुको मत, रुको मत । अपनी बात कह जाओ ! डरो मत !'

'डरो मत' सुनकर रामभरोसे को बरछा-सा गड़ा । मन ही मन कहा—साला दो आने की टुपिया पहन के राजा जमींदार की-सी बात करता है । कल तक साले का भैया-भैया करते मुंह सूखता था, हाट मेलों में गा-गाकर 'सती चरित्तर' और 'किस्सा हातमताई', बेचा करता था । आज हमसे कहता है कि डरो मत !

रामभरोसे इतने लोगों से मिला, किन्तु कहीं भी उसमें स्पर्धा नहीं जागी थी । यहाँ आते ही उसमें चुनौती की भावना जाग उठी । मगर पी गया । बोला : 'महाराज आपही से नहीं कहूँगा तो कहूँगा भी किससे ।'

'अब यही तो बात है रामभरोसे !' नेता ने कहा : 'वे जनता के लोग नहीं । हम हैं जनता के लोग । महात्मा गांधी ने जब कहा कि....'

रामभरोसे धैर्य से सुनता रहा । जब उनका प्रवचन समाप्त हो गया, वह सीधे ही बात पर आ गया । वे सुनते रहे ।

रामभरोसे ने स्पष्ट कहा : 'महाराज ! पुलिस तैयार है कि लड़की को बचा दिया जाये । सरकारी वकील बहस में कमजोर पड़ जायेगा क्योंकि वह भी मानता है कि विद्या बेकसूर है । पुलिस पर रिश्वत का शक न हो, अखबार में उलटी खबर छप जायेगी कि पुलिस बहुत सख्ती से पेस आ रही है । इस मामले में दरोगा रिश्वत भी नहीं ले रहा है । डाक्टर भी रपट दे देगा कि विद्या ने न सिर्फ इज्जत बचाने को ऐसा किया, मगर कातिल गुस्से से भी पागल लगता था । उसे जान का भी खतरा था । फौरी जाँच की गई तो विद्या के जिसम पर हाथापाई के भी निशान थे । अपना वकील है, सो उसने भी जोरदार केस बनाकर तैयार कर लिया है । जेलर और जेल का अमला भी वकील के जरिये गवाही में बुलाया जायेगा और वह कह देगा कि लड़की बहुत ही शराफत से जेल में रही, जिसकी किसी हरकत से यह जाहिर न हुआ कि वह भेकचलन नहीं है । बस सब हो गया । अब जो है सो आपके हाथ है ।'

‘वह कैसे ?’

‘इससे आगे मेरी पहुँच नहीं ।’

‘काम किससे है ?’

‘सैसन जज्ज से !’

‘अरे वो तो सफेद हाथी है । इत्ती रकम कहाँ से लाओगे ।’

‘बिक जाऊँगा ।’

‘मगर इसके लिए एम० एल० ए० साहब के पास चलना होगा । तुम जो जानते हो कि वोट लेते बखत जो कुछ उन्होंने लोगों पर लुटाया है, अगर उसे लोगों से ही नहीं भर लेंगे, तो अगला चुनाव कैसे लड़ेंगे ?’

‘जानता हूँ महाराज ! पर आप बीड़ा उठा लें । जो खर्च-पानी होगा वह तो मैं भेल लूँगा ।’

‘अरे, मैं अपने लिए नहीं कहता । मैं तो सेवा करता ही आया हूँ ।’

‘महाराज ! यही तो आसरा है । अब एम० एल० ए०’, उसने यत्न से कहा—‘वे भी इस गरीब पर महरबानी कर दें, तब तो कोई बात है, बस यही आखिर अटक है ।’

और इसके बाद व्यापार शुरू हुआ और वैसा ही था वह, जैसा रामभरोसे ने अन्यत्र पाया था । चींटी को कन और हाथी को मन ।

सांभ हो गई थी । मनसा की दूकान पर रामभरोसे ने खड़े होकर कुर्ते की जेबें पलटकर बाहर लटका दीं और हँस पड़ा ।

एकांत था ।

‘क्या हुआ ?’

‘हो गया ।’

‘सब खतम !’

‘सब ।’

‘साले पछतायेगा ।’

‘किस बात को ।’

‘नादानी है । लड़कपन है ।’

‘अब जो कुछ हो।’

‘क्या हुआ?’

उसने कहा : ‘मैंने बटुकबिहारी के जरिये एमेल को रुपया चटाया और उसके जरिये सैसन जज्ज को।’

‘वहाँ भी !! उनकी ऊँची जगह !!’ मनसा को आश्चर्य था।

रामभरोसे ने एक उँगली उठाई, फिर बगल की दूसरी खड़ी की, तीसरी और फिर चौथी।

मनसा की आँखें फट गईं।

रामभरोसे फिर हँसा। उस हास्य में मनसा को लगा कहीं एक बड़ा छिपा हुआ गुस्सा था, बहुत बड़ा खिस्यानापन था। ऐसा लगता था जैसे रामभरोसे ने सब कुछ दाँव पर लगा दिया था!

‘जेल में मिल आये हो विद्या से?’

‘मिला था।’

‘क्या कहा उसने?’

रामभरोसे ने उत्तर न देकर कहा : ‘अब कह लेगी जो कहना था। अपनी तो इच्छा कोई बाकी रही नहीं। सब कुछ हो गया।’

मनसा ने व्यथा को पहचाना।

‘मनसा!’

‘क्या है?’

‘एक पाँच रुपये का नोट मुझे उधार दे दे।’

मनसा ने गल्ले की तरफ देखा और धीरे से पाँच का पत्ता उठाकर दे दिया।

रामभरोसे लौट आया।

जब वह चला गया तब बाँस की टट्टी की आड़ से ब्रजेन्दर निकला। मनसा उसे देख सकपका गया।

‘तुम यहाँ काहे खड़े थे?’

‘देख रहे थे कि लाला कहाँ थे, कहाँ पहुँच गये।’ फिर रुककर कहा :

‘तो जेल जाके मिल लिए उससे । अब कोई इच्छा और बाकी नहीं रही ।’

मनसा ने कहा : ‘अरे छोड़ भी ।’

‘छोड़ने को क्या है मनसा ! हम पुराने यार हैं ! दो रुपये को सफेद आँखें कर गया तोते-सी और लुगाई के पीछे ऐसा तबाह हुआ कि आज तेरे सामने हाथ पसारने आ गया । लुगाई में क्या है ऐसा जो इत्ती पुरानी दोस्ती भूल गया । और वह भी उस औरत के पीछे जो न इधर की है, न उधर की !’

‘अब खतम कर !’ मनसा ने बात टाली ।

परन्तु दूसरे दिन बात सारे गाँव में फैल गई ।

पटवारीजी ने सुना और कहा : ‘क्या कहा ?’

रामचरन ने कहा : ‘अरे उसका क्या ?’

जै बिहारी ने कहा : ‘हम तो पहले ही कहते थे ।’

और काकी ने कहा : ‘हाय मरी ! जेल में भी मौका गांठ लिया । आखिर वहाँ जमादार-जमादारनी को तो खबर पड़ ही गई होगी ?’

मेहतरानी कटोरी ने सुना तो पूछा : ‘अब क्या ! कहीं ऐसा भी हो सकै ?’

‘अरी क्यों नहीं ?’ काकी ने कहा : ‘जेल और थाने में क्या किसी औरत की इज्जत बच सकै ? घर के मरद को भले ही दर्द आवै, पराये मरद को औरत से क्या ? भूखे भेड़िये होंय ! भूखे !’

यह तर्क जम गया । और बात दिन-दिन फैल चली । जब मुकदमा शुरू हुआ, जो गाँव वाले शहर अदालत जाते, जाके वे वहाँ भी सुनते और लौटकर रामभरोसे-विद्या की कथाएँ सुनाते ।

रामभरोसे ने सुना तो कहा : ‘मनसा ! यह क्या खबर उड़ रही है ?’

‘चिरंजी, ग्यापा से सुनी है बहुतों ने ।’

‘वे तो भाई हैं न विद्या के !’

‘तभी तो जल रहे हैं ।’

‘क्यों?’

‘यों कि रुपये के खरच होने के डर से वे एक बार मुड़कर उसे देखने तक नहीं गये और चाहा कि उसकी बदनामी की आड़ में बचे रह जायें।’

‘लेकिन मैंने उनकी यह चाल काट दी।’

‘इसीलिये वे तुम्हें बदनाम कर रहे हैं।’

‘कर लेने दे मनसा!’ रामभरोसे ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा।

‘अब जाता हूँ।’

‘कहाँ?’

‘अबे तारीख है आज!’

‘आज फैसला है?’

‘हाँ।’

‘बहस-बहस, सो तो हो ही ली!’

‘हाँ।’

‘छूट जायेगी?’

‘अब भी नहीं छूटती तो मैं कर भी क्या सकता हूँ?’

मनसा ने उसकी वेदना को पहचाना। फिर बड़े धैर्य से कहा: ‘तुमने इतना किया, जितना कोई अपनी खास औरत के लिये भी नहीं करता। धरम की बह के लिये भी नहीं!’

रामभरोसे आहत हुआ। उसने कहा: ‘मनसा! वह कोई मेरी रखैल तो नहीं है? वह एक इज्जतदार औरत है। सब लोग रुपये के बल से ही उसकी ओर नहीं हैं। उसका केस मजबूत है। रुपया तो इसलिये दिया गया है कि कहीं किसी लालच में वे अपनी ईमानदारी से झिग न जायें, क्योंकि उनके हिरदे नहीं होता। कोई जिये, कोई मरे, इससे उन्हें कोई ताल्लुक नहीं होता।’

मनसा ने उत्तर नहीं दिया।

‘तो मैं जाता हूँ।’

‘अगर छूटी तो आज छूट जायेगी?’

‘हाँ ।’

‘फिर !’

‘मैं तो कोसिस करूँगा वह यहाँ न लौटे ।’

‘तो कहाँ जाये !’

रामभरोसे ने उत्तर नहीं दिया ।

‘तू तो संझा तक आ जाएगा ?’

‘हाँ देखो ।’ फिर जैसे उसे कुछ याद-सा आ गया, उसने कहा : ‘हाँ और क्या ।’

मनसा को लगा रामभरोसे के स्वर में कुछ परिवर्तन आ गया था । परन्तु कैसा था यह परिवर्तन, यह वह नहीं समझ सका । रामभरोसे बड़-बड़ाया : ‘बुराई करना बहुत आसान है मनसा ! अच्छाई करना बहुत बड़ा काम ही नहीं, बहुत कठिन काम भी है !’

मनसा ने कहा : ‘जल्दी लौटना । किसी से झगड़ना नहीं ।’

रामभरोसे के होठों पर एक फीकी हँसी फैल गई ।

रामभरोसे का मन भीतर ही भीतर उत्सुक आवेश से बलबला रहा था । विद्या बाहर खड़ी थी । अकेली । जैसे सोचती थी—अब क्या कल ?

रामभरोसे ने पास जाकर कहा : 'विद्या !'

देखा, सिर उठाकर ।

कितनी बदल गई थी । गालों की हड्डियाँ उभर आई थीं ।

बोली कुछ नहीं ।

'मैं आ गया हूँ ।'

केवल देखती रही ।

'तुझे मेरे जाने से कोई खुसी नहीं हुई ?'

कोई उत्तर नहीं ।

रामभरोसे पेड़ से टिक गया । आँखें दूर देख उठीं । फिर जैसे उसे ध्यान आया ।

'अब कहाँ जायेगी ?'

वह नहीं बोली ।

'गाम जायेगी ?'

उसने सिर हिलाया ।

'वहाँ जाकर क्या करेगी ? वहाँ तेरा है कौन ? कोई आया तेरे मुकदमे में ?'

विद्या का बाँध टूटा : 'लेकिन मुझे और जगह भी कहाँ है ?'

'मैं हूँ तो !'

'तू ?'

'मेरे साथ चल ! कहीं परदेस चले चलेंगे ।'

विद्या की आँखों में घृणा झलक आई । कहा : 'मैं समझती थी तेरी

चाल को । तैने मुझे कहीं का नहीं रखा कसाई ! तैने मुझे इतना बदनाम करा दिया । लेकिन मैं तेरी नहीं हो सकती । मैं गाम जाऊँगी और वहीं रहूँगी ।’

रामभरोसे ने कुछ कहना चाहा । किंतु बोल नहीं सका । विद्या चल पड़ी ।

वह पीछे चलते हुए बोला : ‘लेकिन गाँव तो बहुत दूर है । पैदल कैसे जायेगी ? ताँगा-रिक्सा ले लूँ ?’

कह तो गया लेकिन जब मैं पैसे कहाँ थे । मन मसोस कर पीछे-पीछे चलने लगा ।

विद्या ठिठक गई ।

‘तू मेरे संग क्यों आ रहा है ?’

‘मुझे भी पैदल जाना है ।’

‘मेरे पास तो पैसे नहीं । तू पैदल क्यों जायेगा ?’

‘मेरे पास भी कुछ नहीं है ।’

‘तेरे पाँव पड़ती हूँ, मुझे छोड़ दे । पैसे नहीं ह तो मुझे क्यों सताता है । फिर आ जाइयो । आगे चला जा । मेरे करम तो फूटे हैं ही । भगवान तुझे औरत बनाता तो तू समझता !’

रामभरोसे ने देखा और उसके पाँव ठिठक गये । वहीं सड़क के किनारे बैठ गया । देखता रहा, धीरे-धीरे विद्या उस सड़क पर चलती गई, चलती गई और फिर आँखों से ओझल हो गई ।

संध्या हो गई थी । मनसा पानवाले की दूकान पर लम्प जल चुका था । धुंधले उजाले में लक्ष्मीजी और गदाधारी दुलाँगी धोती पहने, पीले जामे वाले, मूँछों पर ताव दिये भीम की तस्वीरें दिखाई दे रही थीं । मास्टर जैबिहारी ने बुरसट को जरा सहला कर अद्रा से सिगरेट खरीदी और ‘पासिंगसो’ की कौर्कवाली साइड को मुँह से लगाया ही था कि ठिठक गये और बोले : ‘अरे !’

उनकी आवाज सुनकर गुड़ लेकर जाता हुआ बट्टीपरसाद भी चौंक

गया। सबने मुड़कर देखा।

विद्या आ रही थी। धूल से लथपथ। धीरे-धीरे, डरी-डरी-सी।

‘छूट गई ये!’ मास्टर ने अचरज से पूछा।

‘छुड़ा लाया सा’ब!’ मनसा ने सिर हिलाकर कहा।

बद्रीपरसाद ने कहा : ‘कौन ! ये तो विद्या-सी लगै !’

‘वा चाचा ! अभी लग ही रही है !’ मनसा ने कहा : ‘वही है।’
उसने फिर कहा : ‘तबाह हो गया रामभरोसे इसके पीछे।’

विद्या पास आ गई। उसने देखा। उनके चेहरों पर अजीब भाव था, घृणा, तिरस्कार, विस्मय। ऐसे देख रहे थे जैसे जाने कौन आ गई थी। चुपचाप चलती गई। लगा एक-एक पाँव दस-दस मन का हो गया था। जो मिलता क्षणभर ठिठक जाता। बोलता कोई नहीं। विद्या को लगा जैसे वह एक ऐसे प्रदेश में आ गई थी जहाँ उसे सब जानते थे, मगर पहचानना कोई नहीं चाहता था।

आखिर घर आ गया। ओटे पर चढ़ी ही थी कि सुनाई पड़ा : ‘मन्सुख की चाची ! तुम्हारे कुनबे की नाक लौट आई है।’

‘अरे आग लगा !’ बुढ़िया ने कहा : ‘अभी तक मरी नहीं?’

‘ऐलो ! वो तो मुकदमा जीत के आई है, बरी होके।’

फिर हास्य की ध्वनि।

फिर एक स्वर आया : ‘पुलस के घाट का पानी पी आई अब तो। अहलकार, मुंसी, डाक्टर, वकील ! ऐसे ही कौन बरी कर देवै ! गिरधर पंडत का तो नाम ऐसा ऊँचा हुआ कि पूछो नहीं। और फिर अम्मा की कोख कैसी परतापिन हुई कि कुल उजागर कर गई यह छोरी ! भली अम्मा सती हुई। आई भी कब लौट के जब सती का मेला जूड़ने को है।’

विद्या को चक्कर-सा आ गया। ग्यारह मील चलकर आ गई थी। प्यासी ! भूखी। अब कोई स्वागत नहीं।

वहीं ओटे पर बैठ गई। कुछ बच्चे और लड़कियाँ निकल आईं देखने।

‘चलो हटो यहाँ से !’ किसी स्त्री ने डाँटा : ‘खबरदार जो यहाँ कभी मैंने देखा । टाँगें तोड़ दूंगी । छिनाल का मेला लगेगा इस गाम में ! जाने किस-किस से...’

इसके बाद स्त्री ने कुछ इतने धीरे से बड़बड़ाया कि साफ़ सुनाई नहीं दिया, मगर आसपास घूँघट की हुई स्त्रियाँ खिल-खिल करके हँस पड़ीं ।

विद्या बैठी रही । द्वार की ओर देखा । मुहर लगी थी ताले पर । प्यास से गला चटक रहा था । उठी । फिर भहराकर गिर पड़ी ।

‘ओहो ! बड़े रंग सीख के आई है !’

‘काकी ! कसौटी पै चढ़ा हीरा जो ठहरी !’

बल लगाकर विद्या खड़ी हुई और ओटे से उतरकर उन स्त्रियों को गली में जाकर उसने पुकारा : ‘काकी !’

काकी पीछे हट गई ।

तब विद्या ने भरिये और सूखे गले से पुकारा : ‘ताई ! जीजी !’

कोई आगे नहीं आया ।

विद्या की आँखों के सामने अंधेरा-सा छा गया । सामने का ओटा पकड़कर धरती पर बैठ गई । स्त्रियाँ कर्कश स्वर से चिल्लाती रहीं ।

विद्या की आँखें खुलीं । बोली : ‘अरे मुझे कोई पानी तो पिला दो...’ स्तब्धता छा गई ।

‘मैं पापिन हूँ, पर मुझे पानी तो दे दो...’

अब उसे रोना आने लगा...

ओटा पकड़कर खड़ी हुई और कुछ सरकते हुए उसने कहा : ‘ताई... मुझे माफ़ कर दो... मैंने तुम्हारा नाम डुबा दिया पर मैंने कोई पाप नहीं किया...’

‘सुना तुमने !’ ताई ने कठोरता से कहा : ‘यार को तो जीता खा गई । तेरी अम्मा ने जिसे भैया बनाया, उसी पै डोल गई तू ! और वह डरा तो उसे तूने मार डाला अपनी चण्डाली में, और जादू कर दिया उसपै

जिसे उस हरदेव ने पाल-पोसकर बड़ा किया था ! और अब आई जमाने को रंग दिखा के सतवन्ती !'

विद्या ने बोलना चाहा, परंतु बोल नहीं सकी । सुबकियों से गला रूँध गया ।

'अरी यह जादू तो मर्दों पर चलइयो चमको !' एक बुढ़िया खोंखिया पड़ी : 'कैंची की एक धार दूसरी से नहीं कटै । यहाँ तो सब लुगाइयाँ हैं !'

स्त्रियाँ ठठाकर हैंसीं ।

वह कराह उठी : 'पानी....'

एक लड़की से देखा नहीं गया । पानी का गिलास भर लाई । ज्यों ही मुँह से लगाया कि तड़ाक किसी ने चपत दी और पानी धूल में गिर गया ।

'हरामन ! नाक कटायेगी ? इसे पानी पिला के क्या जात-बिरादरी का हुक्का-पानी छुड़वायेगी ? जिसे बिरादरी ने निकाल दिया उसे तू जीजी बना रही है....'

लड़की ने करुण स्वर से कहा : 'अम्मा ! बिचारी प्यासी है ।'

'अरी मैं तो पहले ही तेरे बाप से कहती थी, मगर वो कब मानें जो तुझे दर्जा सात तक पढ़ाके माने । यह नतीजा है सामने !'

'ले जा लड़की को ले जा !' किसी ने राय दी ।

'मैं पापिन नहीं हूँ,' भर्राये स्वर से रोते हुए विद्या ने कहा : 'कोई मेरी भी तो सुनो....'

परंतु किसी ने भी नहीं सुना । इसी समय धूल से लथपथ दीखा राम-भरोसे । स्तब्ध । उसे देख स्त्रियाँ चुप पड़ गईं । देखता रहा... फिर चला गया और स्त्रियाँ कौतूहल से देखती रहीं । मनसा की दूकान से गिलास में पानी लाया और बैठकर चिल्लाया : 'तुम हिंदू हो कि कसाई हो ! प्यास से मरते को पानी भी नहीं पिला सकतीं ?'

उसने विद्या के खुले मुँह में पानी डाला । गटगट पी गई । स्त्रियाँ

हँसने लगीं ।

‘आया यार ही काम !’

‘अब पीले लल्ली ! पीने वाली भी भली ।’

‘और पिलाने वाला भी, भगवान ने खूब मिलाया ।’

आँख खोलकर देखा विद्या ने ।

रामभरोसे !!

‘नहीं, नहीं...’ वह चिल्लाई । हाथ से ज़ोर से गिलास छिटक दिया ।

बाकी पानी नीचे जा गिरा ।

अपमानित-सा रामभरोसे खड़ा हो गया । चिल्लाया : ‘यह तुझे मार डालेंगे...’

विद्या ने हाथ से इशारा किया, जैसे—चला जा यहाँ से...’

स्त्रियाँ व्यंग्य से हँसने लगीं । रामभरोसे पीछे हट गया । निगाह पड़ी । देखा दरवाज़ा । मुहर लगा बंद ताला दीखा । वह थाने की ओर चला गया ।

विद्या वहीं ओटे का सहारा लेकर बैठ गई, स्त्रियाँ पास नहीं आईं !

एक स्वर सुन पड़ा : ‘जा परमेसरी, जा यहाँ से ! काहे की हत्या दे रही है । लड़कों पै दया रखियो हमारे ! बिचारे सीधे-सादे हैं ।’

तब वह धीरे-धीरे ओटे का सहारा लेकर लौटी और अपने घर के ओटे पर बैठ गई—या कहा जाये, पड़ रही ।

पाड़े की औरतों की चखचख फैलती जा रही थी । इधर-उधर से मर्द, औरत, बच्चे सब आ-आकर भीड़ लगाकर उसे देख रहे थे ।

‘आ गई बिचारी !’

‘बड़ी मुसीबत की मारी है ।’

‘जैसा किया वैसा पाया ।’

‘पर अब तो पानी कुछ उतर गया ।’

मेहतरानी कटोरी बगल में डलिया लिये निकली थी रोटी माँगने । देखते ही बोली, ‘हाय भैना ! जे कब आई ?’

‘उसी से पूछ ।’

‘लल्ली !’ उसने बढ़कर कहा : ‘कब आई ?’

‘अभी आई है ।’ मल्लो गडरनी ने कहा, ‘पैदल आई है ? इत्ती दूर से ?’

‘अरे प्यासी तड़प रही है ।’ सिकलीगर नूरो ने कहा ।

‘अरे कोई पानी तो पिला दो इसे ।’ कटोरी ने दुहाई दी : ‘गाम की बेटी है । हाथ, लाज न आई इसे सताते ऐसे ! धरम चला जायेगा इसका, नहीं तो मैं पिला देती ।’

दो सिपाहियों के साथ रामभरोसे आया । सिपाही मुहर हटाने लगे । कटोरी ने रामभरोसे से कहा : ‘अरे पंडित ! तुमसे भी देखा जाय है । सरम न आवै । पानी पिला दोगे इसे तो नया हाथ टूट जायेंगे तुम्हारे !’

रामभरोसे झल्ला उठा : ‘मेरे हाथ से पीती कहाँ है ?’

मल्लो गडरनी गिलास भर के पानी ले आई । उसने कहा : ‘उठ ! पानी तो पीले ।’

पानी पीकर होश आया ।

सिपाही चले गये । रामभरोसे ने स्वर उठाकर कहा : ‘यह तो मरेगी । मैंने कहा था—वहाँ न जा । पर नहीं मानी । यहाँ ये सब इसे मार डालेंगी । जान से मार डालेंगी ।’

विद्या ने इशारा किया—‘तुम मत बोलो । मत बोलो !’

स्त्रियाँ ठठाकर हँसीं ।

कटोरी पीछे हट गई । पूछा : ‘क्या मामला है ये ?’

‘इसका यार है ।’ काकी ने कहा । ‘अब पारसा बन रही है मल्लो । बड़ी घुटी हुई रकम है ।’

‘अये आग लगे पानी से बुझे । मुझे क्या ?’ कटोरी ने कहा : ‘मुझे क्या खबर थी कि लैला-मंजून की नौटंकी यहीं हो रही है । ला मुझे रोटी दे । मैं घर जाऊँ ।’

स्त्रियाँ फिर हँसने लगीं । विद्या उठकर धीरे-धीरे घर में घुस गई और

अंधेरे में चुपचाप जा बैठी ।

रामभरोसे दरवाजे पर अकेला खड़ा रहा । स्त्रियों का हास्य सुन-सुनकर उसे क्रोध आने लगा । विद्या अब उसे दिखाई नहीं दे रही थी । घर में अंधेरा था । उसने द्वार पर खड़े होकर कहा : 'कहाँ जा बैठी है अंधेरे में !'

विद्या ने उत्तर नहीं दिया । स्त्रियाँ हँसीं ।

किसी ने व्यंग्य किया : 'हाय, बिचारी डर रही होगी । तू भी वही चला जा !'

रामभरोसे ने लहू का घूंट पिया किंतु स्त्रियों से वह कह भी क्या सकता था । आवेश में चला गया । परंतु फिर उसे याद आया । मीलों चलकर वह आई है । अंधेरे में बैठी है भूखी-प्यासी । सारी बिरादरी हँस रही है । न जाने उसका मन काँप उठा ।

उसने अपने घर जाकर लालटेन जलाई । बैठा रहा । परंतु मन नहीं माना । तेल कम हो रहा था । मनसा की दुकान पर गया । मनसा ने देखा और बोला नहीं ।

'जरा तेल तो डाल दो मनसा !'

मनसा कुड़कुड़ाया ।

'परसों ही तो डाला था ।'

'मुझे नहीं चाहिये । उसे दे आऊँ । अंधेरे में बैठी है ।'

दुकान पर बैठे ठाकुर ब्रजेन्द्रसिंह ने कहा : 'दे भाई मनसा ! मज्जा कोई लेगा, तेल तेरा फुँकेगा ।'

रामभरोसे के आग लग गई । वह चिल्लाया : 'कुत्ते ! कल तक मेरे टुकड़ों पर पला । सारी ठकुरास निकाल दूंगा समझ लीजो ।'

उसका विकराल रूप देखकर मनसा ने ब्रजेन्द्र को डाँटा : 'क्या बकता है यार !'

ब्रजेन्द्र ने उठकर कहा : 'तो दबू नहीं हूँ मैं किसी का । खाया है तो खिलाया भी है ।'

'तूने खिलाया है मुझे कुत्ते ! हलक में हाथ डाल के जबान खींच

लूंगा। मुझे जान की परवाह नहीं है।’

‘क्या यार गम खा!’ मनसा ने टोका। उसने जल्दी से तेल डाला और कहा : ‘तू जा भैया, जा!’

रामभरोसे बड़बड़ाता चला।

ब्रजेन्दर ने होंठों को भींचा और निचले को दाँत से काटकर कहा : ‘तो समुद्र, तू ठाकुरों से अड़ के जीत जायेगा? मैं भी देख लूंगा।’ उसने मूँछें मरोड़ीं।

मनसा मन ही मन हँसा। यह वही मूँछें थीं जो एक दिन हरदेव ने खड़े-खड़े काटकर फेंक दी थीं। लेकिन अब वे फिर उग आई थीं।

लालटेन का प्रकाश फैल गया। भीड़ फिर इकट्ठी हो गई। रामभरोसे चिल्लाया : ‘क्यों खड़े हो यहाँ। जब किसी को कुछ लेना-देना नहीं तो यहाँ क्यों खड़े हो!’

‘रास्ता है।’ रघू ने उद्‌ण्डता से कहा। रघू बामन था।

‘पूछो,’ किसी ने कहा : ‘रास्ते पर भी मुहर लगवा ली है?’

रामभरोसे की इच्छा हुई कि कहने वाले का सिर तोड़ दे, मगर उसे भीड़ में एक भी हमदर्द नहीं दीखा।

‘बखत की बात है’ उसने कहा : ‘आज न सही, लेकिन कल फिर वह दिन आयेगा जब मेरे पास पहले की तरह दौने चाटने को नामा होगा और तब तुम सब फिर मेरे हुकम की तामील में खड़े रहोगे!’

‘ओहो! बड़े धन्ना सेठ बोले!’

‘हमने तो हरदेव की जूठन चबाते देखा।’

रामभरोसे ने कोई उत्तर न दिया। पौरी के द्वार पर जा खड़ा हुआ।

‘आँक् छीं!’ किसी ने छींका।

कोई खाँसा, किसी ने मठारा।

रामभरोसे अब जैसे सब भूल गया। उसने कहा : ‘क्यों बैठी है यहाँ। उठती क्यों नहीं? कब से बैठी है यहाँ?’

कोई उत्तर नहीं।

शून्य दृष्टि ।

‘अरे !’ उसने कहा : ‘इस घर में तो पहले काफी सामान था ! अब कहाँ गया !’

उसने लालटेन से देखा ।

‘हैं ! सब उड़ गया ! चोर साले ! लेकिन एक-एक के घर से निकाल जाऊँगा । समझा होगा लावारिस है । एक-एक का खून पी जाऊँगा । मुझे जान की परवाह नहीं । जीकर ही क्या मिल रहा है । जिसके लिये यह सब है, जब उसे ही मतलब नहीं, तो मुझे ही क्या करना है !’

वह जैसे अपने आपसे बोलता रहा । फिर बोला : ‘नहीं बोलेंगी ! तुझे मारूँगा पहले । समझी ? अब तेरा धरम नहीं बोलता ? क्यों नहीं कहती सबसे चिल्लाकर कि तूने कोई पाप नहीं किया ! कहाँ है तेरा परमात्मा ! उल्लू की पट्टी । मरती है और मुझे भी मरवा रही है । मैंने कहा था वहाँ मत जाये । यहाँ धरा क्या है अब ! चोर साले । कमीन । सब ले गये । एक दिन की देरी हो गई थी मुझे मुहर लगवाने में । सोचा हरा-मियों ने, यह तो गई अब फाँसी पर चढ़ेगी । ले चलो । इनके बाप का ही माल था न ? मत बोल तू ! समझी ! मत बोल ! मुझे क्या ? मेरे लिये तू मर गई । मुझे तुझसे मतलब क्या ? ले जाने दे सबको । तू चुप रह । मैं क्यों बोलूँ ?’ •

विद्या फूट-फूटकर रोने लगी ।

‘बस ! अब रोने लगी । मैंने क्या कहा है तुझसे ? धरम की सौगंध है, मैं एक-एक को जीता चबा जाऊँगा ।’

उसने कोने में धरा मोटा लट्ट उठा लिया और बाहर झपटा । विद्या चकित-सी देखती रही ।

लोगों की भीड़ फट गई ।

सीधा गया बंसी कहार के यहाँ ।

‘बंसी !’

‘काहे !’ बंसी ने जोर से कहा ।

‘वह भैंस तेरे सिपुर्द की थी, कहाँ है ?’

बंसी ने लट्टु देखा । बोला : ‘ओहो ! तो चिल्लाने की क्या बात है । बंधी है, ले जाओ ।’

रामभरोसे ने भैंस खोल ली और ले चला । भैंस देखी तो भीड़ के बचे हुए लोगों में मन ही मन एक विद्वेष-सा भर गया । क्या यह लौंडा गाम पर हावी हो जायेगा ?

भैंस उसने द्वार पर खिड़की के जंगले से रस्सी अटका के बाँध दी । और चिल्लाया : ‘विद्या ! भैंस आ गई । आज मैं एक-एक को देख डालूंगा ।’

उसने लट्टु जमीन पर पटका और सामने जाकर चिल्लाया : ‘पंडित रामचरनजी ! पंडित रामचरनजी !’

उसका कठोर स्वर सुनकर औरतें पीछे सरक गईं । भीड़ पीछे हट गई । उसने धरती पर लट्टु मारकर पुकारा : ‘पंडितजी, बाहर आओ ।’

एक बच्चे ने बाहर आकर कहा : ‘बाबा तो सती के मेले का इंतजाम करने गये हैं ।’

‘हाँ, हाँ !’ रामभरोसे चिल्लाया : ‘कुनबे की सती हुई है न ? सो पंडित को इसमें खाने-कमाने की रोज़ी मिल गई । और जा ! चाचा को भेज !’

‘चाचा ब्यालू कर रहे हैं ।’

‘अबे बुला जल्दी !’

बच्चा डरकर भीतर चला गया ।

भीतर से एक बुढ़िया की आवाज़ आई : ‘अरे कैसा है यह गाम । न हया, न लिहाज । कल का छोरा ऐसे अबे-तबे कर पुकार रहा है और ऐसा निगोड़ा खुले आम का छिनाला ! न बहू देखी, न बेटी !’

‘चुप रह बुढ़िया !’ रामभरोसे गरजा ।

‘कौन है रे !’ रास्ते से घर में चढ़ते ग्यापा ने कहा । उसकी भँवें तनी हुई थीं । ‘किससे कह रहा है ?’

लट्टु कंधे पर रखे उसके पीछे से आगे आया चिरंजी ।

‘अच्छा, तो सिंहजी लट्टु का डर दिखाने आये हैं ?’

पीछे धरती पर लट्टु बजाकर संगरामपरसाद अपनी भारी-भरकम देह हिलाकर हँसा : ‘पिद्दी न पिद्दी का सोरुआ !’

रामभरोसे ने परिस्थिति को समझ लिया कि लट्टु का हिलना भी खतरनाक हो जायेगा। इस समय इनके साथ कुटुम्ब के ही कई लोग हैं। गवाही में जनबल है। गम खाना ही भला है। फिर विचार आया—अरे मार के मर जाऊँगा। लेकिन फिर विचार आया—तब विद्या का क्या होगा ?

‘क्या है बे !’ चिरंजी ने कहा।

‘मैं आया था बैल माँगने जो तुम्हें सँभलवाये थे।’

‘किसने सँभलवाये थे !’

‘मैंने।’

‘तू कौन ?’

रामभरोसे उत्तर ढूँढ़ने लगा।

ग्यापा हँसा। बोला : ‘दाल-भात में, तुम कौन ? कि हम मूसरचंद ! अरे कल के लौंडे ! हमें आँखें दिखाने आया है साले ! अभी ऐसी नहीं बिगड़ी है धरती कि हम तुझसे दब जायें। इतने जूते पड़ेंगे कि चाँद गंजी हो जायेगी।’

भीड़ सरक आई। रामभरोसे के दमन से लोगों को आनंद आया। एक नारा लगा : ‘और क्या भैया ! ग्यापा दादा बचके !’

ग्यापा ने बड़े न्यायी की तरह आगे बढ़कर भीड़ से कहा : ‘हम भगड़ा नहीं करते। धरम की बात है। गिरिधर पंडित किसके चाचा थे ? हमारे ! उनका किरिया-करम किसने भेला ? हमने ! बारह बामन चाचा-चाची की किसने की ? हमने ! सती के मेले को लगाने को किसने खरच किया ? हमने ! हमारे कुनबे की थी सती ! जगत में धरम रहे, लोग कुछ धरम सीखें, इसीसे तो हमने अपना पेट काट समाध बनवाई ? दादा दिन-रात मर रहे हैं इस बुढ़ापे में वहाँ ! क्यों ? इसीलिये कि सती हमारी थी।

हमारी चाची थी। उसकी लड़की जेल गई। हमारी बहन ने हमारी नाक कटा दी। पर हमने उससे कुछ कहा तो नहीं? उसके घर की ईंट तो नहीं उखाड़ी? वो रहे, अपने रहे। हमें क्या मतलब! जिसने धरम छोड़ा, उसको हमने छोड़ा। पर कुछ करे वह, करती रहे। हम न उसके बीच बोलें, न वह हमारे! क्यों जी!’

‘क्यों जी’ गाँव वाले की ऐसी कमजोरी है, कि अगर किसी से यह पूछ लिया तो एक बार को समझे या न समझे, राय वह जरूर देगा। और प्रायः राय बल देखकर दी जाती है। कई बोल पड़े: ‘हाँ, सा’ब!’

ग्यापा को शह मिली। बोला: ‘अब बताओ। बैल भूखे खड़े थे। गी के जाये पानी को तरस रहे थे। हमने सानी-पानी की तो बुरा किया?’

‘अजी राम का भला! राम राम!’ भीड़ के स्वर।

‘तो बैल हमारे हैं भैया! चाचा के वारिस हम हैं। यह घर सामने का जो है, वह भी हमारा है। यह भैंस जो बँधी है, सो भी हमारी है। विद्या तो ब्याह दी। राँड हो गई, तो यह कहीं नहीं किसी धरम-शास्तर में लिखा है कि राँड होने प लड़की को लड़का मान लिया जाये। पर हम तरह देते हैं। क्या करना है हमें घर लेके। जै दिन जिये, आस-साँस ऊपर वाले की दी है, रह ले, ओढ ले। पर चलन ठीक रख। भैंस रख। अरे हम तो बैल भी दे देते, पर उसका करेगा कौन? हम ही! यह करेगा?’

रामभरोसे ने काटा: ‘चलो रहने दो। प्यासी तड़प रही थी तब तुमने पानी तक नहीं पिलवाया, अब उसकी गोई हाँकोगे। यों बल तुम्हारा हो, तो अन्याय न्याय नहीं हो जायेगा।’

चिरंजी ने टोका: ‘अबे लौंडे! मोटर में झाड़-फूंक की होगी! साले गुंडे जमाने के। कसम से मैं तो सरकार की जय बोलूँ कि इन लुच्चों को भूखा मार दिया। लात दे तो पेट में जो सात पितर आके जूते चाट के भूख-प्यास बुझायें। तू लेगा हमसे बैल! बुला ले हिमायतियों को अपने। तू तो क्या अपनी सात पुस्त ले आ जो हाथ तो उधर बढ़ा जाये। हम कहें तू कौन है? तू है कौन?’

रामभरोसे ने क्रोध से अपना डंडा फेंक दिया और अपने बाल नोंच लिये और आवेश में भरा हुआ विद्या के द्वार पर आकर बैठ गया और रोने लगा ।

मनसा आ गया था ।

रास्ते से ही बोला : 'अब रोने बैठे हो रामभरोसे ? क्या-क्या न सम-झाया था मैंने ? तीन हजार में आटेवाले भजनीक ने लड़की दिलाने को कहा था । फिर भी पाँच हजार बचे रहते पास, भूखों तो मरने की नौबत न आती !'

'मत कह मनसा ! मत कह मुझे !' रामभरोसे ने अपना सिर पीटकर कहा : 'इसका गम नहीं । पर गम है कि मैंने आज तक ऐसे बोल नहीं सुने ।'

'अब क्यों सुने ?'

'तो क्या करता ?'

'अकेले हो आज ?'

'मैं इससे भी नहीं डरता । ज़िंदगी तो एक दिन जानी है, फिर उसका क्या ? मगर...'

'मगर क्या ?'

'इसका क्या होगा फिर ?'

मनसा ने उत्तर दिया : 'सारा गाम बैरी हो गया । क्या मिला ? जमाने भर को घूस दी । कपड़े फट गये । दानों के लाले पड़ गये । यार आँखें फेर गये । आठ हजार पयों में पलीता लगा दिया...'

'मत कह मनसा ! मत कह ! वह सुन लेगी ! उसने तो मुझसे नहीं कहा था...वह तो निरदोस है...'' उसने धीमे याचना भरे स्वर में कहा—'वह वैसे ही बड़ी दुखियारी है, उसे मत सुना...'

'मैं क्या सुनाता हूँ ?' मनसा ने कहा : 'तुम्हारी हालत देखके तरस आता है । तुमसे सैकड़ों रुपये पाये हैं, यों दरद आता है । और जिसके लिये यह सब किया, उसने ही क्या दे दिया तुम्हें ?'

‘अरे चुप रह भैया, तेरे पाँव पड़ता हूँ ।’

‘क्यों चुप रहूँ ?’

‘वो सुनैगी ।’

‘तो जिसके लिये कर रहे हो, वो तो तुम्हें बुरा ही समझती है । फिर उस पर क्यों जान देते हो ?’

‘मैंने ही न उसे इस हालत में पहुँचाया है मनसा ? इस गाम में मेरे सिवाय तू है जो जानता है । और तो कोई कुछ नहीं जानता । कहने से लाभ भी क्या ?’

‘अच्छा, कह लोगे तो मानेगा कौन ?’

भीड़ अब छँट गई थी । कोई कब तक खड़ा रहता । अब कोई ‘लुतफ़’ की बात नहीं हो रही थी ।

मनसा ने टेरा : ‘उठो ! अब चलो !’

‘कहाँ ?’ रामभरोसे ने कहा ।

‘तुम्हारी जेब में एक पैसा तक नहीं ।’ उसने कहा : ‘मैं जानता हूँ । इसलिये तुम ग्यारह मील पैदल चल कर आये हो । है न यही बात ?’

रामभरोसे कुछ नहीं बोला ।

‘बोलते क्यों नहीं ? सच नहीं है यह ?’

रामभरोसे ने धीरे से कहा : ‘आदमी पर सब तरह का बखत आया है मनसा ! तू मेरा अच्छा मित्र है ।’

‘गाँव में मेरे देखते-देखते यहाँ कितनी भले घर की औरतें तुम्हें बुरा कह गईं, कुछ अन्दाज है ?’

मनसा की बात सुनकर रामभरोसे को हँसी आ गई ।

बोला : ‘सबकी सब खबर है मुझे । कौन किसका यार है सब पता है मुझे । मगर कोई सबूत नहीं, मेरे संग कोई नहीं ।’

‘इसीसे तो कहता हूँ कि फिजूल जिंदगी बिगाड़ने से क्या मिलेगा ।’

‘तो क्या करूँ मैं ?’

‘उठो ! कहीं सहर जाके दुकान-फुकान करो । सौ-पचास रुपये मुझसे

उधार लो। पेट है तो सब है। पेट का इंतजाम पहले करो। यों इसकी मुहब्बत में क्या धरा है। बल्कि मेरा तो ख्याल है कि मँजनु जब लैला के पीछे पागल हुआ था तब असल में भूखा मर गया था। भला कौन था उसे रोटी करके देने वाला ! लैला उसके पास थी कहाँ जो चूल्हा फूँकती !’

रामभरोसे जो कभी मशहूर मँजनु था, जिसका गीत—‘मेरी जान माँगी तो क्या तुमने माँगा’...

मेरी जान का क्या मेरी जान होगा—’

सुनकर ‘अहाहा’ करके गाँव की भीड़ें भूमती थीं और घोर कलकल-नाद करती थीं, आज वह इस नयी बात पर चिंता में पड़ गया।

मनसा ने फिर कहा : ‘सब साले लिखने वाले भूठे हैं। तू फरहाद बन रहा है ! फरहाद ने बारह बरस पहाड़ काटा, पर ससुर ने कभी रोटी खाई, यह किसी ने नहीं कहा। सब साले भूठे हैं। तू क्या उल्लू हो गया है। अरे दुनिया देख ! हम आज तक न बोले, आज कहते ह, क्योंकि पानी सिर से ऊपर आ चला अब तो !’

मनसा ने कहा : ‘उठो, चलो !’

रामभरोसे ने पूछा : ‘चलूँ ?’

‘चल !’

विद्या चुप ही बैठी रही।

अपने आप से जैसे उसने बात की : ‘जाऊँ तो ?’

विद्या चुप।

‘हाँ मनसा ठीक कहता है तू ?’

मनसा ने कहा : ‘क्या सोचते हो ?’

‘कुछ नहीं ! सोचता था, सब अपना-अपना भाग लेकर आते हैं। सहर में दुकान कर लूँगा। पर वहाँ मेरी रोटी कौन करेगा ?’

‘बकै मत यार ! सहर वाले होटलों में खाते हैं। गामवालों की तरह औरत रखने को रोटी का बहाना नहीं लेते। बिना औरत के क्या लोग जीते नहीं ? चार पैसे हो जायेंगे तो सैकड़ों मिलेंगी ! परमात्मा की दया से

सैकड़ों विधवा आसरम खुले हैं।’

‘पर वे अच्छी औरतें कहाँ होती हैं?’

‘अबे यार वही गधापन ! अच्छी सब गिरस्तनें होती हैं ? और तू अच्छा है?’

‘ठीक कहता है। मैं भी अच्छा नहीं। हाँ, ठीक बात है। मगर....’

‘यह मगर कभी खतम होगी?’

‘यह क्या करेगी ? जिसके घर दिया नहीं, जिसे खाने को इस बेला नहीं।’

‘तू उठ ! यह भी सही। चल मैं दस का नोट देता हूँ। तू इसको आटा-लकड़ी रख जा। फिर तो करमहीन से पिंड छुड़ा।’

‘मैं सहर से तेरे नाम मनीआडर भेज दूंगा। पहुँचायेगा इसे?’

‘नहीं भैया ! मुझे जंजाल नहीं भाता। अब चलना है तो चल, इसके पास आकर क्या मरना है मुझे। इसका क्या है ? जिस घर में है उस पर भी इसका हक नहीं। घर की एक चीज इसकी नहीं। इसकी बजाय तो सुसराल में छिनाला करती तो भी हक से रहती। यह तो उल्लू की पट्टी है जो धरम के लिये मरती है। ऐसी सतियों का जमाना नहीं रहा।’

मनसा की बात सुनकर विद्या द्वार तक बैठी-बैठी सरक आई। किंतु रामभरोसे मनसा के साथ चला गया। विद्या वहीं बैठी रही। शून्य दृष्टि से देखती रही। सामने लालटेन जल रही थी। उसका उजाला भीतर और बाहर गिर रहा था, किंतु विद्या को भीतर और बाहर अंधेरा ही अंधेरा दिखाई दे रहा था। सामने कोई नहीं था। किसीने उसकी चिंता नहीं की थी। सचमुच वह कहाँ थी ! उसका तो कोई कहीं नहीं था। सुसराल में भी पाप था और यहाँ भी। रामभरोसे ही ने तो उसे छुड़ाया था। क्यों छुड़ाया उसने ? उसीने पहले जिंदगी गारत की थी, उसीने लाकर यह हालत की है। क्यों छुड़ाया उसने ? क्यों नहीं मर जाने दिया जेल में। वहाँ रोटियाँ मिलती थीं। वहाँ डाँट लगती थी, और शायद काम भी करना पड़ता। वहाँ सब तरह का सब कुछ था, परंतु मन को काट-काट देने वाला अपमान

तो नहीं था ! वहाँ यह अंधेरा तो नहीं था ! उसे रामभरोसे पर क्रोध आने लगा । इसको मुझसे प्यार है ऐसा ? नीच ! एक राँड से प्यार करेगा ? यह पाप नहीं तो और था ही क्या ? क्यों करता है वह प्यार ? अब आई थी । भूखी-प्यासी । यहीं कुनबे के लोगों में जान दे देती । किसी न किसी का मन जरूर पसीजता । न पसीजता तो मर तो जाती । यह अभाग आया, भगड़ा करके सबको और भी दुसमन बना दिया । पहले से बदनाम थी, अब बदनामी भी ऐसी पक्की हो गई कि छुड़ाये नहीं छूट सकती । आखिर कैसे छूटे । लोग क्यों सक न करें ? वे तो करेंगे ही । समरथ को दोस नहीं लगता । फिर वो तो अबला ठहरी । और कमबख्त पीछा नहीं छोड़ता । क्यों आता है यह । क्यों इसने सारे रुपये फूँक दिये अपने ! दर-दर का भिखारी बन गया तो मैं क्या करूँ ? मैंने तो नहीं कहा था इससे कि मेरे लिये तू कुछ कर । मैंने कब कहा था कि तू भी मेरी जिंदगी में आ जा और मेरा सत्यानास कर जा । इसे जरूरत क्या थी कि मेरी ओर उठता और सबके मन में मेरे लिये धिन जगा जाता । सच तो है । इसका मेरा नाता ही क्या ?

विद्या तरह-तरह की बातें सोचती रही और जितना ही दह सोचती, उसे सबकी जड़ में रामभरोसे का ही कसूर मिलता । उसी ने उसको मिटाया था ! अम्मा ही ऐसी थी । सही । पर वह ठहरी अम्मा । लोग उसकी समाधि बना चुके हैं । मेला जुड़ रहा है । लोग उसे देखेंगे तो क्या कहेंगे ?

विद्या काँप उठी ।

कैसे कटेंगे दिन ? क्या करेगी वह । अब उसे फिर प्यास लगने लगी थी । भूख से पेट व्याकुल हो रहा था । जी किया कूँ से पानी ले आये, पर उठा नहीं गया । इतना चल कर आई थी कि पैरों में सकत ही नहीं बची थी । वहीं लेट गई और माथे को पकड़ लिया । लालटेन की रोशनी आँखों को लगने लगी थी, सो बत्ती जरा नीची कर दी । और छायाएँ दीवारों पर लम्बी हो गई ।

उसने आँखें मीचीं, किंतु भूख के मारे कलेजा मुँह को आ रहा था ।

जिंदगी में पहली बार विद्या को लगा कि वह मर जायेगी ! और न जाने क्यों उसके रोंगटे खड़े हो गये ।

‘यह ले !’ रामभरोसे ने पोटली उसके सामने रखते हुए कहा : ‘सँभाल ! तू मुझे पास नहीं आने देना चाहती न ? मत आने दे । अरे तेरे बिना क्या मैं मर जाऊँगा ? तू समझती होगी कि मैं बदमास हूँ । तुझे लुगाई जान तेरा पीछा करता हूँ । अब रहने दे मुझे सरम आती है कहते हुए कि इस गाम में मुझे लुगाइयों की कमी नहीं । पर उस सबको जाने दे । तुझे क्या ? क्यों बताऊँ तुझे ? तू मेरी है कौन ?’

विद्या चौंक उठी परंतु रामभरोसे कहता गया : ‘यह आटा है, पिसा हुआ तैयार । दो रोटी सेंक के डाल ले पेट में । यह नौन है । थोड़ी दाल और मिरच यह है । फिर कभी पैसे आयेंगे तो ला दूँगा । अब मेरे पास कुछ नहीं ।’

उसने सामान रख दिया और उठकर चला । द्वार पर पहुँचा ही था कि धीमी आवाज़ सुनाई दी । ‘तुम क्या खाओगे ?’

क्षण भर वह ठिठका और फिर कहा : ‘तुझे मतलब ?’

‘ले जाओ यह सब ।’

‘क्यों ? परचूनिया छुए तो कोई बात नहीं, मैं छू लूँ तो यह सब असुद्ध हो गया ? कौन नहीं जानता परचूनिये लाला छेदीलाल का, चार बच्चों की अम्मा सुग्गो चमारिन से ताल्लुक है । क्या मैं उससे भी गया-बीता हूँ ?’

‘तुम भूखे रहोगे ?’

रामभरोसे ने सिर खुजाया और कहा : ‘भूखा तो कुत्ता भी नहीं रहता विद्या । फिर तुझे मेरी चिंता क्यों हो ? तू मुझे बुरा समझती है । पूछ । मुझे तेरी चिंता क्यों है ? बता दूँ ? इसलिये कि मैं तुझे अच्छी समझता हूँ । पर मुझे तुझसे कुछ लेना नहीं । मुझे तुझसे वास्ता भी नहीं रखना है । समझी ।’

उसने बाहर पाँव रखा । और मुड़कर कहा : ‘जिस बखत तैने कच-हरी में कहा : मेरी माँ सती थी ! उस बखत मैंने जान लिया कि त देवा

है विद्या ! देवी है । मेरी जेब में वह चिट्ठियाँ थीं जो मैं तुम्हें बेकसूर साबित करने को लाया था—हरदेव की उसकी चिट्ठियाँ । पर मैंने नहीं दिखाई ।’

‘क्यों नहीं दिखाई तैने ?’

‘क्यों दिखाता ! जब तू नहीं चाहती थी तो मैं क्यों दिखाता ? तू जिसे इतना चाहती है, उसकी इज्जत क्या मैं घटा देता ? ज्यादा से ज्यादा फैसला तेरे खिलाफ हो जाता और तुम्हें फाँसी हो जाती । विद्या ! तेरी देह नहीं रहती, न सही, पर क्या तू मेरे लिये सचमुच मर सकती थी ? दुनिया कुछ कहे, पर मैं तो तुम्हें जानता हूँ ! यह गाम तुम्हें बुरा समझता है ! समझा करे । यहाँ इतने गंदे लोग हैं, और मैं भी उनमें से ही तो एक हूँ, मैं क्या नहीं जानता ? लेकिन बस एक बात है । पाप को उधारो मत तो तुम भले हो । यहाँ तो ऐसे-ऐसे पापी और पापिन हैं कि परमात्मा की कुदरत के खिलाफ काम करते हैं और उनका सिर भी नहीं झुकता । तू नहीं जानती होगी इन बातों को । जानकर भी क्या करेगी ? ऐसी कौन भली बात है ! पर मानता हूँ । तुम्हें हिम्मत है । किताब एक पढ़ी थी मैंने भजन की । उसमें लिखा था—असली बलवान सत्य होता है । उससे बढ़कर केवल परमात्मा होता है । उस बखत मैं इसे समझा नहीं था । पर अब देखकर समझता हूँ तुम्हें । पहले समझता था कि पढ़े-लिखे लोग अच्छे होते हैं । पर वह भ्रम भी अब दूर हो गया । पढ़ा-लिखा आदमी बहुत कम भला मिलता है । उसे पैसे की एक भूख होती है कि आदमी का ख्याल कभी नहीं करता । लुटेरा होता है । अच्छा अब जाता हूँ । पर रोटी तो खा लेगी न ?’

उसका स्वर भारी गया ।

विद्या ने कहा : ‘खालूँगी पर एक बात है ।’

‘कह ।’

‘मानोगे ?’

‘क्यों नहीं ?’

‘आधा आटा ले जाओ ।’

‘क्यों?’

‘तुम रोटी बना लेना।’

रामभरोसे हँसा। कहा: ‘नहीं।’

‘क्यों?’

‘मेरे पच्चीस रास्ते हैं। मैं तो कहीं न कहीं खा ही लूंगा।’

उसकी आँखें सूख से भींग गईं। उसने उन्हें पोंछ लिया और कहा: ‘अब तो भूख भी नहीं रही विद्या! सब कुछ पा लिया। तुझे मेरा इतना खयाल है। उसका खयाल है तुझे, जिसने तुझे कहीं का नहीं रहने दिया। पर सच बता, क्या सारा कसूर मेरा ही है? उन दोनों का नहीं है? उसका नहीं है जिसका नाम आज पुज रहा है...’

‘चुप रहो! मैं नहीं सुनना चाहती। वह मेरे लिये इतनी प्यारी चीज है कि उसका नाम भी नहीं सुनना चाहती। उसीने तो पाला था!’

‘इसीलिये?’

‘तुम नहीं जानते। संसार उसको बहुत अच्छा मानता है। माँ संसार में सबसे पवित्र होती है। उसका नाम मैं गिराऊँ अपने लिये! क्या होगा। मैं भली बन भी गई तो क्या भूल जाऊँगी कि मुझ पर उसने जो जुलम किया उसने उसके लिये अगनी में जीती ही जल के प्राश्चित्त कर दिया। वह उसके हिरदे की कितनी बड़ी बात थी। कितनी बड़ी ममता थी!’

‘पगली! वह गुस्सा था। उसका प्यार था न, उसे धक्का लग गया था। यह सोचकर कि जिसके लिये उसने सब कुछ किया, वही उसे धोखा दे गया।’

‘तभी तो उसने देखा कि उसने अपने पेट की जाई के साथ क्या जुलम कर दिया। उसने मुझे छाती से लगा कर दूध पिलाया था रामभरोसे! तुम नहीं जानते! दुनिया चलती है कि माँ से बड़ा कोई नहीं माना जाता। जो अपनी माँ के ऊपर आँच लाये उससे तो रास्ते का कुत्ता भी अच्छा होता है। मरकर उससे मिलूंगी तो सरम से सिर तो नीचा नहीं होगा मेरा!’

कहने को तो होगी कि मैंने कुछ नहीं किया !'

रामभरोसे ने देखा और कहा : 'भगवान तुझे देखता तो होगा विद्या !
कहीं ऐसा न हो कि हम भरम में रहे आर्ये और वह हो ही नहीं ।'

'एक विनती करती हूँ । मानोगे ?'

'तू कह तो सही ।'

'तुम अब जाओगे ?'

'हाँ, क्यों ? न जाऊँ ?'

'क्यों न जाओगे ? जरूर जाओ ।'

'फिर ?'

'अब लौट कर न आना ।'

रामभरोसे को जैसे वज्र की चोट लगी ।

'अच्छी बात है ।' उसने भरपूर स्वर से कहा : 'जाता हूँ । अब नहीं
आऊँगा ।'

विद्या चुप हो गई । रामभरोसे ने देखा क्षण भर और फिर बाहर के
अंधेरे में उतर गया ।

विद्या उठी । अंधेरे में ही घड़ा खोजा, क्योंकि जितने दिन चल सके,
लालटेन का तेल बचाने को उसने उसे बुझा दिया । फिर घड़े लेके अंधेरे में
ही कूँए पर चली गई । पानी खींच लाई, दो घड़े । द्वार बंद करके दिया-
सलाई ढूँढी । जहाँ तब रखी रहती थी, वहीं मिल गई । कोने में पड़े कुछ कंडे
बीने । चूल्हा जलाया और आटा गूँधकर रोटियाँ बनाई और खाकर आग
राख में दबा दी और बिना खाट के धरती पर ही पड़ रही ।

एक धर्म में मन और तन चलते हैं । पर जब एक सीमा हो जाती है,
तब मन अलग और तन अलग हो जाते हैं । देह अपना धर्म ढूँढती है और
वह प्राथमिक हो जाता है । लेटी तो थकान से सो गई । यह देह एक माता
है, जो मन रूपी हठीले बालक को पालती है । बहुत थक जाती है तो सो
जाती है और हठीला बालक भी तब चपचाप सो जाता है । ग्यारह मील
चली, फिर जो हवा यहाँ लगी उसने उसके अंग-अंग को झुलसा दिया था ।

जब आँख खुली तो हड़बड़ाकर बैठ गई। सूका उगा नहीं था। गाँव सो रहा था। चुपचाप फिर पौरी में आकर पड़ रही।

धूप चढ़ आई तो बैठ गई। अंग-अंग टूट रहा था। सारा दिन बीत गया यों ही एकांत में बैठे-बैठे। उसने द्वार पर झाँका भी नहीं, और उसे पता भी नहीं चला कि बाहर लोगों ने क्या कहा, क्या न कहा। जब रात हो गई और सन्नाटा छा गया तो आज कल से अधिक रोटियाँ बनाईं। कुछ खाईं, कुछ दूसरे दिन को रख लीं और चुपचाप जाकर कूँए से पानी भर लाईं।

तीसरे दिन लोगों में कुछ बात चली।

‘मर गई क्या?’

पर कटोरी मेहतरानी ने कहा : ‘अब हय ! काहे को मरेगी लल्ली ! मुझे रोटी दी उसने। काम लग गया मेरा।’

‘हाय ये कब !’ ताई ने पूछा।

दूसरी ने कहा : ‘अरी ! इसारों में काम हो जावै ऐसों का। किसी को कानों कान खबर न हो। क्या समझ रखा है ? खाने-पीने को कहाँ से आया उसके पास?’

कोई उत्तर न दे सका, क्योंकि उस क्षण किसी की नज़र नहीं रही थी।

‘और वह मरा रामभरोसे अब नहीं आवै इधर?’

‘कौन जाने?’

स्त्रियाँ हँस पड़ीं।

सुना विद्या ने। पीछे हट गई किवाड़ से। आंगन में जा बैठी। वह तीन दिन से बंद है।

लेकिन क्यों बंद है ? आखिर क्या किया है उसने ?

अदालत ने तो उसे छोड़ा ही है। फिर भी किसी को उससे हमदर्दी नहीं है ?

क्योंकि रामभरोसे ने उसको छुड़ाने में रुपया खर्च किया है।

लेकिन मुकदमे में कौन रुपया नहीं खर्चता। सब खर्चते हैं।

पर सवाल यह है कि रामभरोसे ने क्यों किया ? उसे क्या मतलब था ! बिना मतलब के कोई करता है ? और वह भी आठ हजार !

आठ हजार ! इत्ती बड़ी रकम !

वह कल्पना भी नहीं कर पाई ! इतना धन था इसके पास ? तभी सब इसकी खुसामद करते थे । रुपये में इतना जोर होता है । अगर रुपया न पहुँचता तो वह सचमुच बे कसूर होने पर भी छूटती नहीं । इंसाफ । कैसा इंसाफ ? हर एक लुटेरा है । इत्ते-इत्ते बड़े आदमी हैं । भगवान ने उन्हें सब कुछ दिया है । हुकूमत करते हैं, मगर हिरदै किसी के पास नहीं है । वे तो बिदवान लोग हैं । बड़ी-बड़ी किताब पढ़ते हैं । ऐसी पढ़ते हैं अंगरेजी की ; जैसी चाचा भी नहीं पढ़ते थे, जिनकी बुद्धि की धाक सात गाँवों में पुजती थी । फिर वे क्यों करते हैं ऐसा ?

विद्या सोच नहीं पाई ।

अंधेरा घिरता आ रहा था ।

नासपीटे एक खाट तक छोड़ नहीं गये । अब तो विद्या ने घर के गूदड़ इकट्ठे करके बिछा लिये थे । सड़क के किनारे की पौरी में दोनों तरफ से साँकल चढाके सोती । अंदर सोती तो डर लगता कि कहीं पीछे से रामभरोसे चढ़ न आये । पर अब वह डर कम हो गया था क्योंकि इतने दिनों में ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी । सोती तो तरह-तरह के विचार आते । बड़ी देर तक वह सोचती रहती !

माँ क्या थी ? क्या उसकी असलियत वह नहीं जानती ? फिर भी कैसी है यह दुनिया जो उसे ही सती मानती थी । संसार के इस विचित्र व्यवहार पर उसे बड़ा आश्चर्य होता । लेकिन अम्मा जलमरी थी । तो जो मर जाता है, जिसमें मरने की ताकत होती है, वही असल में जबर माना जाता है । तो क्या उसे भी मर कर ही अपने को साबित करना होगा । पर मरे भी तो कैसे ! वह मर जायेगी तो नाम तो ऐसा ही रहेगा ।

विद्या सोच नहीं पाती ।

मन कहता : विद्या रोटी कर ले ।

क्या करना है खाकर !

अरी खायेगी नहीं तो जियेगी कैसे ?

पर जीकर भी क्या होगा ?

लेकिन क्या वह बिना मौत आये मर सकेगी ?

नहीं ।

तब खाना तो होगा ही ।

जीने के लिये यह जरूरी नहीं है, कि जीने की इच्छा भी हो । जीना तो एक कैद है । जितने दिन जीना है उतने दिन चक्की तो पीसनी ही है, जेल की न सही, दांतों की ।

आटा देखती । अभी तो है ।

लेकिन जब यह बीत जायेगा तब ?

तब !!!

यह तब इतना बड़ा हो जाता कि फिर वह सोच भी नहीं पाती । क्योंकि इस तब का न कहीं निस्तार था, न अंत !

क्यों न वह कल बाहर निकले । मुहल्ले में बूढ़ी बड़ी हैं । उनके पांव पकड़े । रोये । गिड़गिड़ाये । उनके सामने सिर फोड़े । अपना कसूर तो पूछे । क्यों डरे वह ?

तब अम्मा याद आती । मानो कह रही थी : मूरख, धरम है नेकनाम । नाम नहीं है, तो जहान में कुछ भी नहीं है ।

वह देखती । माँ सामने से गायब हो जाती और वही 'साँय-साँय' छा जाती ।

चूहा भी आहट करता तो लगता, कोई आ रहा है । कहना चाहती— कौन है वहाँ ? पर गला जाने क्यों रूँध जाता ! वह पुकार नहीं पाती ।

कभी-कभी उसे लगता कि वह बोलना भूल तो नहीं गई ? वह बोलती धीरे से, तो स्वर गले में फँस-सा जाता ! और तब काँप उठती । दीवार की तरफ देखा करती । तब उसे चित्र याद आते ।

माँ ने कहा : प्रसाद खाले, जल्दी चली जा !

उसके चहरे पर एक कुटिलता थी ।

तब नहीं समझती थी वह । 'पर अब याद करती है तो समझ में आता है ।

यह जगह थी जहाँ दादा का दम निकला था । कैसा भयानक था वह पल ! और फिर उसे लगता कोई विकराल नयनों से देख रहा है !

वह कौन है ?

कौन है वह !

हरदेव !!!

वही रूप ! बिखरे बाल !

वह ठठाकर हँस रहा है और हाथ फैलाकर उसकी ओर बढ़ता आ रहा है...

वह कहती है—हट जा पीछे नीच...

पर वह हँसता है...

मैं आ गया हूँ...

चल हट तू तो मर चुका है...

मैं मरकर भूत बन गया हूँ... अब तुझे भी ले जाऊँगा...

मैं चिल्लाकर लोगों को बुलाती हूँ...

वह हँसता है...

अब तू किसी को बुलाना चाहे तो कोई भी नहीं आयेगा...

भूठ... दुनिया में क्या लोग नहीं रहते...

लोग अंधे हैं, बेवकूफ हैं ! अब तू मेरी होगी...

नहीं...

कौन है यह...

हरदेव... बढ़ रहा है...

हट जा, मैं कहती हूँ...

तू चिल्ला भी नहीं सकती...

तब वह चिल्लाती है... लेकिन आवाज़ उसके गले में घुट जाती है...

और तब आँखें खुल जाती हैं, फटी-फटी सी...देह पसीने से लथपथ भींग जाती है...लगता है दिल डूबा जा रहा है...छू कर देखती है...अपने हाथ को नोंचकर देखती है...दर्द होता है अभी...वह अभी जी रही है...

नहीं तो, कोई नहीं है...उधर कोने में...नहीं, वहाँ भी कोई नहीं है। उठकर पानी पीती है। तसल्ली-सी होती है, पर फिर सोने की हिम्मत नहीं पड़ती...

बैठी रहती है...और तब भोर की हवा धीरे से चलने लगती है...धीरे-धीरे...वह वहीं ऊँघती-सी लुढ़क जाती है। जब जागती है तो सामने की दीवार पर एक आँख से देखता कौआ दिखाई देता है।

कौआ ! कितनी यादें ले कर आ गया है यह कौआ !

कितनी छोटी-सी थी तब । चाचा की गोद में बैठी रहती थी। कौआ करता था—काँव काँव...

एक आँख से मुड़कर देखता था...

वह छोटे-से हाथ से उसे बुलाती थी...

का का...

अम्मा हँसती थी। चाचा हँसते थे।

कौआ कितना अच्छा लगता था तब ?

अम्मा तब कितना प्यार करती थी। चाचा को तो बस जैसे विद्या ही थी। उन्होंने ही तो यह नाम रखा था—विद्या। चाचा बाहर से आते थे, तब कभी खाली हाथ नहीं आते थे। कभी भी कुछ मिठाई न लाये हों, ऐसा याद नहीं आता। तब रोती थी तो माँ कितने प्यार से बगल में सुलाकर पंखा करती थी। सारी रात बीत जाती थी और वह जागती हुई पंखा करती रहती थी। तब उसे कितना प्यार था !

क्या यह वही माँ थी जो अब उसकी दुश्मन हो गई थी ! क्या हो गया था उसे ! कैसे हो गया था उसका हृदय इतना कठोर ! जब सुसराल गई थी तबतक तो माँ का वही रूप देखा था। विद्या जब विधवा होकर लौटी और उसने माँ का जो रूप देखा, वह तो उसे समझ नहीं पाई थी। उसे

आशा थी कि वह घर जायेगी। माँ देखते ही फूट-फूटकर रोयेगी कि हाथ बिटिया का सुहाग उजड़ गया। फिर सुनेगी कि बिटिया ने चरित्तर नहीं बिगाड़ा तो आँखों से प्रेम के आँसू भरेंगे और कहेगी : चल मरने दे उन्हें। हमें क्या कमी है ? जो भगवान ने दिया है, उसमें बिटिया को छोड़ और है ही कौन !

पर हुआ क्या ?

विद्या सिहर उठती।

यही आँगन था जहाँ वह किलकारियाँ मारती थी। माँ पकड़ने आती थी तो दौड़कर बाहर निकल जाती थी रास्ते पर और दोनों छोटे-छोटे हाथों से धूल उठाकर बालों में डालते हुए कहती थी—गंगा, गंगा...

यही ताई और काकी तब उठाकर गोद में खूब खिलाती थीं। पर अब तो कोई पूछता भी नहीं ?

आँखें भर आतीं विद्या की। फिर ध्यान आता—साँभ हो जाती। छोटी-छोटी लड़कियाँ खाने खींचकर एक पैर से कूद-कूदकर खेलतीं। अम्मा ढेरती : अरी विद्या ! अरी लल्ली !

तब वह सुनकर भी नहीं सुनती।

माँ एक धप लगाकर खींच ले जाती और वह रोती तो पुचकारकर कहती—ले बिटिया, दूध पीले ! देख, चन्दा मामा आयेंगे, लल्ली के बिस्तर पे उतरेंगे...

तब वह कहती—चन्दा मामा दूर के...

चाचा कहते : भाभी !

अम्मा मुड़कर देखती।

फिर दोनों मुस्करा जाते।

रात हो जाती। विद्या किसी न किसी तरह पहुँच जाती चाचा के बिस्तर पर !

हम तो यहीं छोरेंगे...

नहीं तू अम्मा के पाछ...

नहीं, चाचा के पाछे...

अरी कहाँ गई ?—अम्मा पुकारती ।

दौड़कर पौरी में दादा की खाट के नीचे छिप जाती ।

कहीं लल्ली को देखा है ?—अम्मा पूछती ।

दादा हुबके में दम लगाते पूछते—बाहर तो नहीं रह गई ? अरी अब तो अंधिरिया छा गई । भीतर बुला लेती...

सच बड़ी ऊधमिन हो गई है...

बच्ची ही तो है...

तब वह एक बार उछलती और दादा कहते : हट बिल्ली, अरे हट... बिल्ली...श...श...

यह रही दो टाँग की बिल्ली । तब अम्मा पकड़कर निकालती और फिर दादा के पास बैठती वह । खूब हँसते सब ! क्या वे इसी धरती के दिन थे ?

अब विद्या को विश्वास नहीं होता ! इसी चिरंजी और इसी ग्यापा भैया ने उसके ब्याह में कितना काम किया था । जबरन खाना खिलाना पड़ता था, वर्ना चैन नहीं लेने देते थे । क्या आज उन्हीं को इतनी धिन हो गई थी ।

सचमुच जिन्दगी के मुँह में अगर बचपन रूपी गुण की डली का रस नहीं गया तो क्या गया ! जिसने एक बार इसे चूस लिया, उसके लिए बाकी रह क्या गया ! शाश्वत सौन्दर्य है यह बचपन ! विद्या भी उसे ही बार-बार याद करती है, क्योंकि इसकी मिठास तो मृत्यु तक कभी भूली नहीं जा सकती । माँ होती है न ? ऐसी मीठी यादें छोड़ती है मानस पर कि बर्बर से बर्बर हृदय की मनुष्यता कभी भी उसीके कारण सदा के लिए मिट नहीं जाती । संसार एक भीड़ है । पर हर आदमी, हर औरत का अपना ही एक अनुभव होता है, बचपन से बुढ़ापे तक का । जब मौत आती है तब वह अनुभवों का भंडार केवल अपना रह जाता है । मौत के लिए आदमी अकेला है, जिन्दगी के लिए उसे हजार टाँग की गाड़ी चाहिये, जिसे समाज कहते हैं ।

दुपहर के सन्नाटे में उसने खिड़की का पल्ला जरा-सा खोलकर देखा । शांति खड़ी थी । वही सातवें दरजे तक पढ़ी लड़की, जिसने उस दिन पानी पिलाने की चेष्टा की थी । वह नाते में ताऊ की लड़की लगती थी । शांति ने इधर-उधर देखा, फिर चुपचाप बाहर ओटे पर आ गई । पर तभी वह ऐसे करने लगी जैसे कुछ गिर गया था जिसे वह हर जगह ढूँढ़ रही थी । विद्या ने पल्ला उठका लिया जरा और संध से देखा । उसका बाप आ रहा था । पास आ गया तो कठोर स्वर से बोला : 'क्या कर रही है यहाँ ?'

'मेरा ऐरन गिर गया है । ढूँढ़ रही थी ।'

'ऐरन तो दोनों कान में हैं ।'

शान्ति डर गई थी ।

'घर चल !' वह चिल्लाया था : 'खबरदार जो इधर कभी आई तो ! याप रखियो टाँगें तोड़ दूँगा ।'

शांति चली गई थी, मरी हुई-सी ।

शांति ! इससे पहले कितनी बातें होती थीं ! अब वह उससे बातें भी नहीं कर सकती ? कैसी है यह जिन्दगी !

विद्या फूट-फूटकर रोने लगी । लेकिन रोने से होता क्या है ? कुछ भी तो नहीं । पर अपना मन तो हल्का हो ही जाता है । पर कितनी देर को ? उतनी देर जितनी देर आँसू आँखों से उमड़ते रहते हैं । इसके बाद, लगता है भीतर कुछ खाली हो गया है । और मन यों अपना भारीपन खो देता है । विद्या बार-बार हिम्मत करती कि जाये, उन लोगों से मिले, अपनी बात कहे, चिल्ला-चिल्लाकर कहे, मगर फिर कुछ भी नहीं कह पाती ।

संझा की बेला हुई । पहले जिस तुलसी के थांवले पर दीपक जलता था, अब वहाँ अंधेरा था । माँ इसकी परिकम्मा किया करती थी । चाचा हँसकर कहते थे : पत्थर पूजो, पेड़ पूजो, इनसे क्या लाभ !

माँ कहती थी हँसकर : देवर ! तुम समाजी हो तो देहली के बाहर रहो । हम तो भीतर वही करेंगी जो होता आया है ।

दादा कहते थे : अरे रहने दे । अपना ज्ञान न बघार यहाँ ?

चाचा कहते : लो ! दादा को भनक पहुँच गई । तू यहाँ आ विद्या !
मैं तुझे गीत सिखाऊँ ।

वह बैठ जाती । फिर चाचा गाते :

वेदों का डंका बजा दिया

उस काली कमली वाले ने...

वह भी गाती । तब अम्मा कहती : रहने दो । संभा का बखत है ।
लल्ली तू गा :

माँ गाती :

जै जगदीस हरे

ऊँ जै जगदीस हरे...

दादा की अलग फुँकती पौरी में से :

को नहिं जानत है जग में प्रभु

संकट मोचन नाम तिहारो...

यही गाना वे अलस अंधेरे गाते जब उनका हारी बैल खोलता । हारी तो पीछे आया था । पहले दादा ही बैल भी हाँक ले जाते थे ।

तब वह कभी घर, कभी कूँआ, कभी मन्दिर, कभी खेत, कभी चामड़, कभी बड़ी इमली के नीचे...सब जगहों पर, तब तो वह सब जगह चली जाती थी । गुड़ियों के संग खेलती, सहेलियों के संग नीम के गुद्दे पर झूला डालकर कैसी लंबी पेंग बढ़ाकर सावन में झूलती थी...

पर अब, अब वह कहीं नहीं जा सकती ?

सन्ध्या को सुनती किवाड़ के पीछे से औरतें बतरातीं ।

‘हाय सांति को मारा आज घर पर !’

‘क्यों, भला उसने क्या किया ?’

‘सुना इधर आई इसकी तरफ तो बाप ने देख लिया ।’

तो सांति को मारा । क्यों मारा ?

उसी के कारण !

पत्थर पर सिर दे मारा विद्या ने । चक्कर भी आ गया । लेकिन उससे लाभ ? कुछ नहीं ।

यों दो दिन और निकल गये । रातें और भी काटतीं । सबरे श्याम खड़ा था । भाभी का बच्चा था वह चार बरस का । खूब खिलाती थी विद्या उसे । जी किया गोद में उठा ले आये और उसे खूब प्यार करे ! मातृत्व की भूख सौ-सौ बाँहें खोलकर पुकार उठी, किन्तु फिर ध्यान आया । यह अबोध भी मार खायेगा और अभी तो कुछ नहीं जानता, परन्तु शायद मार खाकर यह भी कहीं घृणा न करने लग जाये ! उफ ! यह भी ! इतना-सा बच्चा भी !

पीपल का न दीखने वाला बीज जब दीवार में गिरता है, तब कौन जानता है, पत्थरों के जोड़-जोड़ से घिन करने वाला यह बीज बरसात का पानी पी-पीकर कैसा मुटा जायेगा और कैसा सब पर छा जायेगा ?

रात होने को आ गई । विद्या से रहा नहीं गया । द्वार ही आज खोल लिया ।

‘अरे !’ एक स्त्री-स्वर सुनाई दिया : ‘आज तो पट खुल गये ।’

किसी ने हँसकर कहा : ‘पट तो जाने कब के खुल गये ।’

घृणा से द्वार उसने फिर बन्द कर लिया । खूब रोई, खूब रोई ! कुत्सा जितना कचोटती थी, आत्मसम्मान उतना ही रुलाता था । मन किया बाहर निकल जाये और खूब लड़े उससे, खूब लड़े । परन्तु जाने क्यों जब द्वार के पास पहुँची तब साहस ही जवाब दे गया ।

वहीं बैठ गई । देर हो गई । भूख लगने लगी । आँगन में आटा गूँधा और रोटियाँ सेंकीं । फिर इधर-उधर देखकर द्वार जरा खोला और कूँए पर पानी खींचा । कोई नहीं था । भीतर घुसने लगी कि भूरी कुतिया संग

आ गई।

पानी धरकर द्वार बन्द करके भूरी को छाती से चिपका लिया। और कोई न आये पर मायके की एक सहेली तो आई थी।

कुतिया ने 'कुर-कुर' की। बड़े प्यार से उसने उसे रोटी खिलाई। तब तक खिलाई जब तक वह खाती रही। फिर उसे एक पुरानी कठौती में पानी डालकर पिलाया। फिर रोटी खाकर जब गूदड़ों पर लेटी तो भूरी गई नहीं, वहीं बगल में धरती पर लेट गई। कुछ देर पूँछ हिलाती रही, फिर आँखें मूंद लीं उसने।

आज कितना अच्छा लगा उसे। पहले भूरी आती थी तब उसे विद्या हमेशा रोटी खिलाती थी। आज भूरी उसी को याद करके आई थी। उसमें कोई फरेब और कमीनापन नहीं था।

'भूरी ! तू तो मुझे बुरा नहीं समझती ?'

'कुर कुर !'

'भूरी ! मैं बुरी नहीं हूँ। मैंने पाप नहीं किया। तू भगवान से पूछ ले। मैंने पाप नहीं किया।'

'कुरकुर, कुरकुर !'

'भूरी ! तू आई। देख तूने कितना अच्छा किया। सब मुझसे बिना बात धिन करते हैं। मैं उन्हें कैसे समझाऊँ ? वे तो मेरी बात भी नहीं सुनते। रोज सोचती हूँ बाहर जाऊँ ? पर कैसे जाऊँ, वे तो मुझसे बात ही नहीं करना चाहते। भूरी ! तू जायेगी तो नहीं। देख, मैं दिन-रात अकेली रहती हूँ। सबेरे बिचारा कौआ आता है। और बेदरद ! तू इतने दिन में आज आई है ! अब जायेगी तो नहीं ?'

'कुरकुर, कुर कुर कुर।'

'आ भूरी, सो जायें। हम-तुम तो पुरानी सहेलियाँ हैं !'

आज विद्या को डर नहीं लगता। जीवन की शक्ति जीवन का सान्निध्य है। प्राण को प्राण की सात्वना है। सुख और दुःख मनुष्य के अनुभव हैं। उसकी सत्ता की अभिव्यक्ति के रूप हैं, जिनके माध्यम से वह सृष्टि से

तादात्म्य करता है। ऐसा ही तो है यह मनुष्य इस निखिल व्यापक सृष्टि में। परंतु अपने जैसा ही इस सत्ता के संतोष का एकमात्र आधार है, तभी तो हमारा भगवान भी हमारी ही जैसी शक्ल का दिखाई देता है। हम छोटे हैं, परंतु हमारा छोटापन ही हमारी कल्पनाओं की नींव डालता है और उस पर जिस बड़प्पन की इमारत हम खड़ी करते हैं, वह वास्तव में जितनी बार हमें ऊपरी सतह तक पहुँचाती है, उतनी ही बार तह की भी याद दिलाती है।

विद्या उस भूरी कुतिया के साथ सो गई। भूरी को जैसे मालूम था।

यों रात बीत गई।

विद्या उठी तब भूरी आँगन में खड़ी थी।

विद्या ने उसे फिर रोटी डाली। फिर ध्यान आया। अगर सारी रोटी कुतिया खा गई तो वह क्या खायेगी? पर खा जाने दो, पास तो है ही। जो होगा देखा जायेगा।

किंतु भूरी एक बार दरवाजा खुलने पर जो निकली तो फिर खो ही गई। साथिन आई थी, चली गई। उस ईमानदार जीव के मन में कोई पूर्वग्रह नहीं। जो मारता है उसके पास नहीं जाती। जो रोटी डालता है, उसे समान रूप से चाहती है और जो परदेसी है, उसे देखकर भौंकने लगती है।

विद्या का एकांत अब उसे फिर खलने लगा। संध्या का सन्नाटा होता ही ऐसा है कि जी अकेले में बहुत अधिक उचाट खाता है। साहस करके बाहर ओटे पर जा खड़ी हुई।

सबने आश्चर्य से देखा। परंतु वह नहीं हटी।

असीम दृढ़ता से उसने पुकारा : 'काकी !'

काकी को जैसे विश्वास नहीं हुआ। बाहर आई।

फिर विद्या ने पुकारा : 'ताई !'

ताई तो जैसे मर गई ताज्जुब से ! कैसे हुआ इसको इतना साहस ! आई। ओटे पर खड़ी हुई।

विद्या ने देखा । वह खड़ी रही ।

फिर पुकारा : 'सुनो ! सुनो ! मेरी बात सुनो ।'

सब चुप हो गये ।

'मैं क्यों सबसे अलग हूँ ?'

कोई उत्तर नहीं ।

'मुझसे इतनी घिन क्यों है ?'

कोई जवाब नहीं ।

'मैं मर जाऊँ ?'

सब चुप ।

विद्या का मन मरोड़ें खाने लगा ।

वह फिर चिल्लाई : 'तुम सब धरमातमा हो ! मैं अकेली पापिन हूँ ।'

अनजाने ही आँखें भर आईं । गला भर्रा गया । पर इंसान वहाँ उसे नहीं लगा कोई । घर थे बेजान । उनसे ज्यादा जान थी पेड़ों में जो खड़ी जगह हिलते थे । उनसे भी ज्यादा जान थी आदमीनुमा शकलों में, जो हिलती भी थीं, चलती भी थीं, किंतु जिस पथ पर वह कभी सिर उठाकर चलती थी, वहाँ अब वह पुकार रही थी और कोई सुनने वाला भी नहीं था ।

सामने से पुजारी गंगासहाय और लालाराम पटवारी आते दिखाई दिये । उसने साहस एकत्र करके पुकारा : 'ताऊजी !'

दोनों ने देखा । शायद पटवारी कुछ विचलित हुआ किंतु उसने पुजारी की ओर देखा जो कठोर और गंभीर था । डर के मारे पटवारी दूसरी तरफ़ देखने लगा ।

विद्या ने ओटे से उतर कर पुजारी के चरण पकड़कर उन पर सिर रख दिया और पुकारा : 'ताऊजी ! मुझे मार डालो । मुझे टुकड़े-टुकड़े कर के फिकवा दो !'

वृद्ध पुजारी ने कठोर स्वर से कहा : 'छोड़ दे मेरा पाँव, छोड़ दे !'

विद्या का स्वर गले में अटक गया । वृद्ध अपना पैर छुड़ाकर चला गया ।

भीड़ ने ठहाका लगाया। पटवारी ने सिर घुमाकर भी नहीं देखा। विद्या कुछ देर पड़ी रही और फिर बहुत घायल और थकी हुई-सी ओटे पर आई और तब उसने भीतर आकर द्वार बंद कर लिया।

आज वह रोना चाहकर भी रो नहीं सकी।

औरतों की टोली गुलज़ार रही। रोटी पकाना, बच्चों की देख-रेख, घर का इन्तजाम—ऐसे काम हैं जो मनुष्य को प्रायः अपना सुख देखने वाला बना देते हैं। इसलिए कहते हैं कि स्त्रियों में परस्पर दोस्ती नहीं होती। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि स्त्रियों के पास वह स्वतन्त्र आर्थिक आधार नहीं होता, जो मैत्री के लिए आवश्यक हृदय की विशालता को जन्म देता है। किन्तु प्रायः आर्थिक रूप से स्वतन्त्र स्त्रियाँ भी परस्पर मैत्री अधिक नहीं रख पातीं। इसका कारण यही लगता है कि स्त्री अपनी मनोवृत्ति में अपने सुख का आधार पुरुष में प्राप्त करती है, स्त्री में नहीं; क्योंकि पुरुष उसके सुख-दुःख का भार अपने ऊपर उठाकर उसके अहं को अधिक सन्तोष देता है, जब कि स्त्री स्त्री को वैसा कुछ नहीं दे पाती। संसार के बहुधन्धी जीवन में पुरुष को बहुत-से काम होते हैं, अतः वह व्यापक की बात सोचता है और जब उससे उसका अन्त नहीं तृप्त होता, तब वह अध्यात्म की ओर अग्रसर होता है। कैसा आश्चर्य है कि त्याग की जिस छलना में पुरुष स्त्री को त्याज्य समझकर ब्रह्मचर्य की महिमा गाता है, उसी ब्रह्मचारी के प्रति स्त्री को बहुत बड़ा आदर होता है। वह भी उस पुरुष को मन ही मन बड़ा समझती है, जो उसके प्रति आकर्षित नहीं होता। ऐसा ही तो आकर्षण था विद्या को अपने चाचा के प्रति जिसे वह अपना पूज्य समझती थी। इस सारी विषमता में वह एक प्रकाशस्तंभ की तरह उसके सामने खड़ा था। मानो कहता : विद्या ! डर मत। मैं तेरे साथ हूँ।

वह कहती : चाचा ! डरती नहीं हूँ।

तो रोती क्यों है ?

सब मुझसे घिन करते हैं न ?

हिन्दू समाज बहुत बुरा है। तू जानती है कि मैं इसीलिए सुधार करता फिरता था।

चाचा की वे आर्यसमाजी बातें आतीं उसकी आँखों के सामने। और हृदय को एक धैर्य-सा बँधता। परन्तु वास्तविकता कल्पना से सदैव अधिक कठोर और बर्बर होती है।

वही स्त्रियों में अधिक मुखर होती। जीवन के यथार्थ में स्त्री का कल्पनात्मक स्वरूप प्रायः नहीं उतरता।

‘हाय !’ काकी का स्वर सुनाई दिया : ‘अब तो यह लड़की सिर पर चढ़ती जान पड़ रही है !’

ताई ने कहा . ‘अरी तो लातों के देव बातों से मान गये हों कभी, ऐसा हमने तो इतनी उमर हो गई, कभी देखा नहीं। कोई उसे कर ही क्या रहा है जो वह डरे। तुम नहीं बोलते, मत बोलो ! बला से उसकी। उसे तुम्हारी फिकर ही क्या है ?’

कटोरी मेहतरानी ने कहा : ‘सो विचारी दिन-रात तो पड़ी रहे भीतर ! ऐसी उसकी कौन उमिर हो गई है जो वह जेलखाने से में पड़ी गई है !’

विद्या किवाड़ के पीछे से सुनती जरूर।

‘ऐ लो !’ ताई ने कहा : ‘हमने किया क्या ? भाई तू रह। रह ले। हमें नहीं तुझ जैसी से कोई सम्बन्ध रखना। जब हमारा मन राजी नहीं, तो क्या करें ?’

‘हमारी बिरादरी तो नीच है ताई। हम ये सब क्या जानें। तुम ठहरीं बामन ! ये धरम की बात है। पर मेरा तो मन सच कहूँ भीतर ही भीतर पिघल उठै देखके।’

स्त्रियों की बातें विद्या का संचित साहस ऐसे उड़ा देतीं, जैसे कपूर को आग। सुलगा-सुलगाकर, जला-जलाकर। वह रोज जो कुछ सोचती, शाम को अनुभव करती कि व्यर्थ था। तिनके का भी तो सहारा नहीं था।

काकी ने कहा : ‘लीक-लीक चले तो गाड़ी ठीक। नहीं तो अौदक-

नीची दुनिया में क्या ठिकाना ? क्या जाने कहाँ जाके गिर जाये ।’

‘पर यहाँ गिरने का मौका भी तो हो !’ मेहतरानी ने टोका और लड़की ने लाकर जो रोटियाँ उसके आँचल में डालीं, उसे कमर में लपेटकर खोंस लिया ।

‘तुझे क्या खबर ?’

‘हाय, कोई कुछ कहे तो न जानूँ, कि रात सुपना हो जाये !’

‘वह रामभरोसे है तो ?’

कटोरी ने भोलेपन से कहा : ‘हाय ! वो आवै क्या ?’

‘आता ही होगा !’

‘तुमने देखा काकी ?’

‘अरी मैं क्या बैठी रहूँ जो देखा करूँ कि किसके कौन आया, कौन गया ?’

कटोरी ने कहा : ‘यह भी कोई बात हुई भला ? ऐसे तो कोई भी किसी के लिए कह दे !’

‘तू बड़ी हिमायतिन बनी है उसकी ।’

‘ऐ काकी ! मुझे बड़ों से क्या लेना-देना । पर, यों ऐसी कहो जो अकल में उतरे ।’

‘तो जो वो आता ही हो तो तुझे क्या खबर ?’

‘हाय तुम गजब करौ ।’ मेहतरानी ने कहा : ‘मर्द-मानुस है, भला आता-जाता क्या दीखता नहीं ? ऐसा क्या मच्छर बन के समा जाता होगा जंगले से ।’

कुछ स्त्रियाँ हँस पड़ीं । परन्तु समस्या बनी रही ।

‘अब तो वो बेकार है न ?’

‘हाँ मोटरें तो बन्द हो गई ।’

‘फिर क्या करे ?’

‘पुलस से मिलता-जुलता तो मैंने देखा ।’

‘सो क्यों री ?’

‘अय हय ! हमें क्या खबर ? यों उड़ती-उड़ती मैंने जमादार (यानी पति) से सुनी थी कि अब तो चामड़ के पीछे मोटी इमलियों में जमके जुआ होवें । वहीं डटा रहै वो । पुलस को चटावै खूब । हाथ का तो ऐसा पक्का है कि पहले उसने नाल गड़वाई और आठ हजार कमाये तो बारह सौ पुलस को खिलाये ।’

‘मरा जुआरी !’ किन्तु इतनी आमदनी का होना भी तो एक जलन की बात बन गई । किसी का बिटौरा भी अगर दो आने ज्यादा का बिक गया तो गाँव वाला कह देता है : ‘अरे उसने तो पापड़े बेल दिये । फिर यहाँ तो हजारों की बात थी ।’

और सचमुच मनसा ने कोठरी में गिने और कहा : ‘यार ! तू तो किस्मत का धनी निकला । कित्ते हैं खबर है ?’

‘बतइयो !’

‘एक सौ उन्नीस ।’

‘ला दे आऊँ उसे ।’

‘किसे ?’

‘विद्या को !’

मनसा ने आँखें फाड़ीं : ‘सब ?’

‘तू ले ले, जो लेना हो ।’

‘मैं अपने लिये कब कहता हूँ ?’

‘तो ?’

‘तेरे लिये कहता हूँ ।’

‘मनसा !’

मनसा ने देखा ।

‘मैं क्या करूँगा रुपये का !’

‘तो काहे को यह जूआ खेलता है तू ! इतना बुरा काम क्यों करता है ? क्यों उठाता है यह जोखों !’

‘तुझसे कर्जा लिया है न ? चुक जायेगा ।’

मनसा हतप्रभ हुआ ।

‘मैंने कब माँगा तुझसे ?’

‘भूठ कहता था ।’ उसने कहा : ‘खेलता हूँ कि मेरे पास काम नहीं है । खेलता हूँ कि दौंव पर खेलने में जो सनसनी आती है वह मुझे बहुत अच्छी लगती है । आज सात दिन से ऊपर हुए । सामान दे आया था उसे । शायद बीत गया हो । अँधेरी हो जाये तो चुपचाप फिर छिपकर पहुँचा दूँ । कोई जान न पायेगा । गाँव वाले अभी तक अचरज करते हैं कि कैसे विद्या तबसे घर से ही नहीं निकली । मूरख है । वह निकलती है मजे से पानी लेने, मगर लोग तो आधी रात को आँख रखना शुरू करते हैं । ग्यापा तो बाहर ओटे पर सोता भी है ।’

‘तुझे किसने बताया !’

‘अब इतनी आँख तो हम भी रखते ही हैं ।’

मनसा चुप हो रहा ।

उस समय रामभरोसे ने फिर कहा : ‘मनसा ?’

‘क्या है ?’

‘यों ही कट जायेगी ?’

‘अरे यार तू घर बसा ।’

‘बस गया मेरा घर !’ रामभरोसे ने एक उदास साँस भरकर कहा ।

उसका मन जैसे घुमड़कर रह गया ।

‘मनसा !’

‘हूँ ।’

‘अकेली कैसे रहती होगी ?’

‘मैं क्या जानूँ ?’

‘अकेला रहना क्या आसान है ? सब दुरा समझते हों, उस समय अकेला रहना तो मर जाने के बराबर है । मनसा ! वह जी कैसे रही है ? वह मर क्यों नहीं जाती ? मन करता है उसका दुःख दूर करने को उसे जहर दे दूँ और फाँसी पर लटक जाऊँ ।’

‘अबे वा बे उल्लू ! यह भी कोई बात हुई ?’

‘अच्छा मनसा ! वह तो मर गया । यह उसके नाम को जनम भर रोती रहेगी ?’

‘औरत जो ठहरी !’

‘मगर मरद तो ऐसे नहीं होते ?’

‘औरत औरत है, मरद मरद है ।’

‘यह क्यों ?’

‘अरे पाप कभी मरद को लगता है ? औरत को लगता है । औरत को ।’
मनसा ने निश्चय से सिर हिलाया । रामभरोसे ने करवट बदलकर कहा : ‘किसी को लगे मनसा ! लेकिन उसे नहीं लग सकता ।’

‘रोटी खा ले अब !’

‘खा लूंगा ।’

‘तू रोज एक बखत क्यों खाता है ?’

‘वह भी ऐसे ही खाती होगी ! न घी, न साग, न दही, न दूध । सूखी रोटी । अब तो वह भी बीत चली होगी । उसे तो यह भी नहीं मालूम कि मैं हूँ कि नहीं । उसे तो यह भी नहीं पता कि अब आटा खतम होते ही वह क्या खायेगी । मगर गजब की हिम्मत है कि डिगी नहीं आसन से ।’

मनसा ने उत्तर नहीं दिया ।

‘मनसा ! मुझे कुछ सक होता है ।’

‘कैसा ?’

‘ये ग्यापा क्यों सोता है ओटे पर उसके घर के सामने ?’

‘पता नहीं ।’

‘तूने नहीं सुना ?’

‘भैंस उन्होंने उसी रात खोल ली और अब बेच भी दी ।’

‘खूब जानता हूँ ।’

‘अब घर पर आँख है उनकी ।’

मनसा ने बीड़ी सुलगाई ।

‘ले बीड़ी !’

‘नहीं, तू पी ।’ रामभरोसे ने कहा : ‘नीयत यह है उनकी कि अब किसी तरह बदनाम करके उसे घर से निकाल दिया जाये । खार खाये बैठे हैं कि निकलती क्यों नहीं ? मैंने सुना है कि दो-एक दिन में कुनवे की बुढ़िया-सुढ़िया भेजकर उसे पटायेंगे और यों उसका घर से निकलना शुरू करा देंगे ।’

‘तुझे कैसे पता चल जाता है सब ?’

‘अठन्नी बताती है ।’

‘यह नई कौन निकल आई ? बड़ा खनखनाता नाम है ।’

‘बेटा भाड़ू रखती है बगल में । कटोरी भंगिन । अठन्नी देता हूँ उसे रोज । रोज खबरें लाती है । मैंने कह दिया है उससे कि मेरी तो बुराई किया कर विद्या से और सब हालचाल जाँचती रहियो और सब इधर-उधर की उसे बताती भी रहियो ।’

‘तो लगा रखा है अपना जुगाड़ ? लेकिन एक बात कहे देता हूँ ।’

‘वह क्या ?’

‘मुझे लच्छन आगे अच्छे नहीं दिखते ।’

‘क्यों ?’

‘यों ही । मन कुछ ऐसा ही बोलता है ।’

‘पता नहीं, जाने क्या होनेवाला है ।’

‘क्यों ?’

‘अब तेरा भी मन बोलने लगा ।’

मनसा हँसा । रामभरोसे भी ।

मनसा ने कहा : ‘उल्लू का पट्टा आज जाकर हँसा है इतने दिन में ।’

‘मनसा !’

‘क्यों ?’

‘एक बात है ।’

‘कैसे ?’

‘मन में गाँस पड़ गई है ।’

‘काहे की ?’

‘उस दिन जो ग्यापा, चिरंजी ने गालियाँ दी थीं, अभी तक साल रही हैं मन को । ठाकर ब्रजेंदरसिंह ने जो कहा था, मन में चुभ रहा है । इनसे बदला कैसे लिया जाये ?’

मनसा डरा ।

‘क्या करोगे बदला लेकर ! अरे मरने दे यार । आई-गई हो गई ।’

‘हो गई ! उस कुत्ते की ठकुरास मुझ पै चलेगी ? और वह लालची भबुकुआ ग्यापा धरम की बात करता है ! रामचरन सती की समाध पै मेला जोड़ रहा है, जिसने ग्यापा की नाबालगी में बड़ी बहू लाकर उससे...!’

‘अरे चुप रह यार ! कौन नहीं जानता ?’

‘यह ग्यापा फिर मूँछों पै ताव कैसे देता है कमीना ! कसम तेरी ! जो विद्या का ख्याल न होता तो उस दिन मैं दो को सुला के मरता ।’

‘जो न मरता और हाथ-पाँव का लुंज होके रह जाता ?’

‘तू तो सुरू का डरपोक है गाबदू ! हरदेव भैया का कितना दबदबा था !’

‘वे दिन और थे । ये दिन और हैं !’

‘क्यों दिनों में क्या आग लग गई ?’

‘छिनाला कर ! आज फिर पुजैगा । माल चटा माल, राँड़ों को, तो पुजैगा ।’

‘अब नहीं मनसा ! अब नहीं करूँगा वैसा ।’

‘तो घर बैठ ।’

‘सच बैठा तो रहूँ ही । पर आदमी वैसे मरद होता है । लुगाई आने पर वह कित्ता कमजोर हो जाता है । हजार बात सोचने लगता है ।’

‘यह तो तब है जब है भी नहीं ।’

रामभरोसे ने व्यथा से मुँह मोड़ लिया ।

फिर कहा : 'मैंने कैसे बोल कभी नहीं सुने और उस दिन चुपचाप सुन लिये । उसने क्या सोचा होगा ?'

'उसकी जाने क्या फिकर है तुझे ?' उसने 'की' पर जोर देते हुए कहा ।

किन्तु पुरुष का सहज स्वभाव है कि अपनी पत्नी या प्रिया के सामने वह डरपोक नहीं कहलाना चाहता और वह भी तब जब बराबर की हैसियत वाले से टक्कर हो जाये ।

'मैं तो तुझे सलाह देता हूँ ।' मनसा ने कहा : 'पहले रुपये इकट्ठे कर ले और तब देखा जायगा ।'

मनसा की बात सुनकर रामभरोसे ने सिर हिलाया ।

दोपहर हो गई ।

जुआ हो रहा था ।

जब जुम्हारसिंह अपना 'हिस्सा' लेकर चला गया, जो इकट्ठा होकर महीने भर में, ऊपर डी० एस० पी० से नीचे तक औकात के हिसाब से बँट जाता था, तब रामभरोसे ने अपनी जेब पर हाथ रखा । इस समय अस्सी रुपए थे उसके पास । बाकी मनसा के अपने निकलते थे । दो रुपये निकालकर भीतर रखे अंटी में और अठहत्तर से खेलना शुरू किया । उसकी इच्छा थी रुपया इकट्ठा करने की ।

जल्दी से रुपया इकट्ठा कर लूँ । फिर जब खूब हो जायगा तो सहर से चार गुण्डे बुलवाकर इन ग्यापा, चिरंजी और ब्रजेंदर की हड्डियाँ ऐसी कुटवा दूँगा कि फिर न हाथ के साबुत बचें, न पाँव के । भीख माँगने के काबिल रह जायें बस ! यह थी उसकी प्रतिहिंसा । शक्ति और मान की तृष्णा !

और रुपया इकट्ठा हो जाए तब विद्या चली चले, सहर में पान की दुकान हो छोटी-सी । रोज साम को अपने हाथ से उसे मसालेदार मीठा पान खिलाया करे और सुख से रहे । मुहल्ले में दल तैयार कर ले अपना और राज करे—यह था उसका सुख-स्वप्न ।

और सहर में तो बहुत तरह के लोग होते हैं । अन्नू, दुअन्नू, रुपए पर

व्याज देकर कर्ज लेने वाले मिल जाते हैं, शराबी-लुंगाड़े । उनसे बीह्रगत करे । अपने दल के बल पर राज करे सब पर । फिर जैजात (जायदाद) बना ले ।—यह थी उसकी कल्पना ।

खेल शुरू हो गया ।

जीता रामभरोसे । अबके पन्द्रह ! फिर बीस ! फिर अड़तालीस ! एक सौ तिरसठ हो गए कुल—अष्टी के दो मिलाकर । अरे मूल के दूने—उठने लगा तो चुन्नी ने कहा : ‘अरे बैठ यार, कहाँ जाता है । यह क्या कि जीत के चल दिये । दिल रख । जीतना होगा फिर जीतैगा ! डरता क्यों है ?’

‘डरता हूँ मैं ?’ उसने फिर जमकर कहा : ‘प्यारे ! हार-जीत से क्या डर ! देने वाला फिर देगा । आ जाओ !’

चंदा जब लाल-लाल-सा उगा रामभरोसे का सूरज डूब चुका था । अंटी में सिर्फ एक रुपया बाकी । देने वाले ने सब कुछ ले लिया था ।

चुन्नीलाल ने हँसकर कहा : ‘रामभरोसे ! बहुत चूके ।’

‘देखा जायेगा फिर ?’ वह खिसियानी हँसी हँसा ।

लौटा तो पाँव डगमग कर रहे थे । संसार लुट चुका था ।

अभी वह चामड़ के पास ही था कि कटोरी मिली । उसने हाथ फैला दिया । अठन्नी रखी, तो बोली : ‘लाला ! तुम कहाँ डोल रहे रहे हो ?’

‘क्यों ?’

‘कुछ उसकी भी खबर है ?’

‘क्या हुआ ! !’

‘दो दिन से भूखी है । मैं तो काम छोड़ दूंगी उसका । मुझे देने को रोटी तक नहीं उसके पास ।’

‘तैने कल-परसों मुझसे क्यों न कहा ?’

‘हाय, मुझे याद न रही । मेरी ननद आ गई थी सो फुरसत नहीं पाई । कहीं तुमसे मिलते देखती तो जाने क्या सोचती ।’

यह कह उसने आँखों के कोनों से देखा और मुस्कराकर कहा : ‘कहीं

वह सोचती...'

रामभरोसे ने यह सब नहीं देखा। कटोरी कुंठित हो गई। रामभरोसे के सिर में हथौड़ा-सा चलने लगा। वह चल पड़ा। कटोरी देखती रह गई।

आज कहा है कटोरी ने ! जेब में सिर्फ डेढ़ रुपया है बाकी। इसका क्या ले, क्या न ले ! पहले कह देती, इकट्ठे दस-पन्द्रह का सामान डाल आता चुपचाप। कटोरी को देने को रोटी तक उसके पास नहीं। वह चलते-चलते रुक गया। कटोरी आ रही थी। पास आई तो पूछा : 'क्यों री ! तुझे कैसे पता वह भूखी है।'

कटोरी ने कहा : 'मुझे रोटी नहीं देती न ?'

'तूने मांगी थी ?'

'क्यों न मांगती ?'

'क्या कहा उसने ?'

'कुछ नहीं।' आँखों में आँसू भर आये।

रामभरोसे को अपने पर गुस्सा आने लगा। क्यों खेला वह जुआ। इत्ता लालच किया, तभी तो देने वाले ने सब छीन लिये। पेट का सहारा मंजूर हुआ है, महल बनाना नहीं।

रामभरोसे कुछ भी नहीं सोच सका।

'अरे तुम काहे को उसके पीछे हलकान हो रहे हो। तुम्हें कुछ कमी है ?' वह मुस्कराई : 'आज ही मुझसे ग्यापा की बहू पूछती थी कि राम-भरोसे ने इस विद्या को बिगाड़...'

'खबरदार !' रामभरोसे ने फूत्कार किया : 'उसके लिये जो कुछ भी कहा।'

'तो फिर क्यों ऐसे दीवाने हो रहे हो ?'

'मैंने उसे छुआ भी नहीं।'।

'और खेत में रबड़ी...'।

'उस बखत मैंने उसे परसाद के धोखे में भंग खिला दी थी। और यह

देख...’ रामभरोसे ने मोढ़ा खोलकर दिखाया : ‘उसने कैसा हाथ मारा यह !’

‘हाय देया ! डायन है । राँड तो हो गई है, फिर तुम-सा कहाँ मिलता ! तुमने क्या किया फिर ? इसी घाव के पीछे आठ हजार फूँक दिया उसके पीछे, जो अब वह मुड़कर भी तुम्हारी तरफ नहीं देखती ? यह घाव देख के भी उससे घिन नहीं हुई तुम्हें ?’

‘नहीं कटोरी ! यह घाव कित्ता अच्छा था । पुर गया, पर मन पर गहरा घाव कर गया । औरत को ऐसा ही होना चाहिये । पवित्तर ! छुए तो जैसे आग की लौ की तरह जला दे । मैं उसे देखता हूँ तो चौंधिया जाता हूँ । मेरी सकत उसके सामने खतम हो जाती है । सोच नहीं पाता कि उससे क्या कहूँ ?’

‘अये चल हट बबुए ! लुगाई को दूर से देखके डरै । उसमें ऐसी क्या बात है ? जैसी मैं, वैसी वो ! मेरे से पूछ ! गाम के बड़ी-बड़ी नाकवालों की पोल मेरी मुठ्ठी में है । मेरा जमादार जान जाये तो मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दें ।’

‘नहीं कटोरी ! हम सब इस गन्दी दुनिया के लोग हैं । वो सरग की रहने वाली भूल से यहाँ आ गई है ।’

‘अब ठहर जा ! दो दिन की भूखी है । सरत लगाऊँ जो कल आके रास्ते पर आँचल पसारकर न बैठ जाये । बबुआ ! भूख की मार सबसे बड़ी मार होवै । बड़े-बड़े यों ही बिलबिला जाते देखे मैंने । रंगीलाल ने दूसरा ब्याह किया तो पहली बहू ने मुँह फुला लिया और पाँव पर पाँव धर के बैठ गई । काम बन्द कर दिया । नवेली ने रोटी न दी उसे तो तीसरे दिन पाँव पकड़ लिए उसके । रोटी बिना तो परमात्मा भी छोड़ जावै इस देही को ! तू तो उल्लू है !’

हुमके से चली गई वह । रामभरोसे वहीं अंधेरे में बैठा रहा । अब चांद की रोशनी दूर फैलने लगी थी, जिसमें गाँव अब सोने लगा था । रामभरोसे जहाँ बैठा था वहाँ भूतों का निवास बताया जाता था । कहते थे वहाँ इकला-

दुकला मिल जावे तो भूत ले जाते हैं। परन्तु रामभरोसे को किसी ने न छेड़ा। शायद भूत भी उससे ऊब गये थे।

गजर बजा। ग्यारह !

रामभरोसे चौंककर चल पड़ा।

‘कौन है ? कौन है ?’ चिरंजी चिल्लाया।

‘अरे कूँए पर कौन है वहाँ अंधेरे में !’

‘अरे देखियो रे !’

घड़ा फूटा-भट् !

फिर एक छाया-सी भागी।

‘अरे कौन था ! कौन था !’

‘कोई नहीं।’

‘अबे यार ! घड़ा कैसे पड़ा है यहाँ ?’

‘यह रहा, यह रहा !’

‘कौन होगा ?’

ग्यापा और चिरंजी ने एक दूसरे की ओर रहस्यभरी दृष्टि से देखा। और सिर हिलाया। परन्तु बोला कोई नहीं। ग्यापा ने केवल विद्या के घर की ओर इशारा किया।

और दोनों द्वार के सामने आकर बैठ गये।

‘कौन है ?’

कोई उत्तर नहीं।

‘अरे कौन है ?’

‘मैं हूँ रामभरोसे !’

‘इस बखत यहाँ कैसे आया ?’

‘जा रहा हूँ गाम छोड़कर !’

‘गाम छोड़कर ?’

‘हाँ, सदा के लिए।’

ग्यापा प्रसन्न हुआ। कहा : ‘क्यों चला भैया ?’

‘अब क्या करूँ ? यहाँ खाने को क्या है ?’

‘तो रात को क्यों भाग रहा है ?’

‘मनसा के घर जाता हूँ इधर ! दो-एक रुपये देगा तो काम चल जायेगा ।’

‘यह पोटली कैसी है तेरे कंधे पर ?’

‘अपना कुछ सामान है ।’

‘गाँव की हालत ही ऐसी है ।’

‘क्यों क्या हुआ ?’

‘पता नहीं । कूँए पर अभी कोई आया था । जाने कौन था ?’

‘कोई ऊपर का (यानी भूत) था ?’

‘अरे नहीं भैया, था तो कोई भीतर का ही ।’

रामभरोसे को कौतूहल हुआ ।

‘भीतर का ?’

‘अरे तुझे क्या लेना है ?’ चिरंजी ने कहा : ‘कोई औरत थी । यहाँ पानी भर रही थी । हमारी आहट लगी तो घड़े छोड़-फोड़ भाग गई ।’

‘कोई चमारिन तो नहीं थी ?’

‘अब हमारे लिए तो चमारिन-भंगिन ही थी जो हमसे डर के भाग गई ।’

ग्यापा ने सिर हिलाकर कहा : ‘थी कोई छिनाल !’

रामभरोसे के दिमाग में बिजली-सी कौंध गई । कहीं विद्या ही तो नहीं थी ! कहीं वही तो प्यासी नहीं बैठी है भीतर ? भूखी-प्यासी ! भूखी-प्यासी ! भूखी-प्यासी ! भूखी-प्यासी विद्या ! भूखी-प्यासी ! बार-बार बस यही दिमाग में बजने लगा । कंधों पर रखी थी आटे की पोटली, जो वह यहाँ पहुँचाने आया था लेकिन यहाँ सामने ही बैठे थे यह लोग । फिर क्या करे अब ? पिछवाड़े से चला जाये ! कहीं विद्या चिल्ला पड़ी तो । कहीं किसी ने चढ़ते-उतरते देख लिया तो ? क्या होगा विद्या का ? क्या कहेगी वह ? क्या मर न जायेगी ? पर आता था न हरदेव ! किसी को पता चला ? कोई जान

सका ? लेकिन तब कोई आँख तो नहीं रखता था !

रामभरोसे ने बात टाली : 'तो फिर राम-राम भैया ! मुझसे उस दिन गलती हो गई। उसके लिए माफी चाहता हूँ। उसके तो जो हो तुम हो। तुम जो धरम के हो, सो मेरा पाप कैसे हो जाता। जी में आता है तुम्हारी जूती सिर पर बैठा-बैठा मारता रहूँ। मगर क्या करूँ पेट की लाचारी है।'।

ग्यापा प्रसन्न हुआ। कहा : 'जो हुआ सो हुआ। उसका क्या है ? यह लड़की किसकी ? हमारी ! बता ! तू उस दिन वैसे लट्ट लेके क्यों आया ? हम दब जाते तो हमारी क्या बात रह जाती ?'

'वो भैंस सुना कोई ले गया ?'

'अरे वो हमीं ने बेच के रुपये मेले में लगा दिये भैया ! अब हम तो चाची के पीछे कंगाल हो गये।'।

'सबरे लगैगा मेला ?'

'हाँ, पर तुम तो जा रहे हो। देखते जाना।'।

'क्या देखूँगा मैं पापी ! वह सती ठहरी। मैं पापी ठहरा। और यह ठहरी पापिन ! हमारा क्या मुँह है जो सती को देखें। और खैर मैंने भी ऐसा कौन बहुत बड़ा पाप किया है ? करने वाली तो वह है जो भीतर बैठी है।'।

'भैया ! इधर तो हमने आँख रखी ऐसी कि किसी यार को भीतर जाने नहीं दिया।'।

'रोटी-फोटी तो तुम्हीं पहुँचाते होगे ?' रामभरोसे ने अबोध बनकर पूछा।

'और कौन देता है भैया। बखत पै तो खून ही जोस मारता है। कुछ भी हो, आखिर तो कुनबे में अपनी बहन ही होती है।'।

'तो मैं चलूँ अब ?'

'अरे मेला देख के जइयो यार ! सती की पूजा करके जइयो। भगवान चाहेंगे तो सब बेड़ा पार होगा।'।

'अब चलने दो, फिर देखा जायेगा।'।

‘तुझे कसम है, यहीं से लौट जा । ऐसे गाम छोड़ के नहीं जाते ।’

रामभरोसे ने कहा : ‘अच्छी बात है । मनसा के ही हो आऊँ ?’

वह चला, पर सोच रहा था । कहीं विद्या ने यह बातें किवाड़ के पीछे से सुनी होंगी तो ! क्या सोच रही होगी वह मेरे बारे में ! कैसे भूटे और कमीने हैं यह लोग ! कैसे पहुँचे यह आटा अब उसके पास ! वह तो भूखी-प्यासी बैठी होगी भीतर !

एक पाँव बढ़ता था, पर दूसरा पीछे जाता था, मन भटक रहा था अधर में । पीछे जाने का मौका नहीं था ।

विद्या ने अपने घड़े की आखिरी बूंद भी उँडेल ली । गिलास पौन भर गया तो पी लिया । आज वह बफरने लगी थी । अब उसे क्रोध आ रहा था । क्यों भागी वह डर कर कूँए पर से ! और सचमुच उसने सुना था छिपकर । तो रामभरोसे भी उसे पापिन कहता है ? और घर आकर सामने उससे कहता है देवी । रोम-रोम में जलन-सी होने लगी थी । यह है उसका असली रूप ! और यह लोग ऐसे भूटे और कमीने हैं कि कहते फिरते हैं कि यह ही मुझे रोटी देते हैं । क्यों डरूँ मैं ! खुलकर बाहर जाऊँगी !

भूख में बगावत होती है । बगावत में शोर, चाहे उसका नतीजा कुछ हो या नहीं । शोर में सचाई होती है, और बहुत बड़ी सचाई होती है, लेकिन, जिनका स्वार्थ टकराता है वे कभी भी उस सचाई से पिघलते नहीं । वे हमेशा यही कोशिश करते हैं कि उस शोर को घोंट दें । उसे सदा के लिए समाप्त कर दें ।

विद्या का विक्षोभ हुमकने लगा था । मर जाये वह ! जान दे दे ! क्या करेगी ऐसे रहकर ? कब तक ऐसे जानवर की तरह माँद में पड़ी रहे ! कोई बोलने को नहीं । हँसना और रोना भी भूल गई है वह ! केवल कटोरी से कभी-कभी बात हो जाती है ।

विद्या ने घुटनों पर सिर रख लिया । वह सोचना चाहती है, पर सोच नहीं पाती ।

हठात् वह चौंक उठी । घर के पिछवाड़े की तरफ से कोई चीज आकर

आँगन में बगल में ही गिरी। अँधेरे में उठाई तां देखा कि एक छोटी-सी पोटली थी। खोली—भुने चन थे !

किसने फेंके ?

और कौन फेंकेगा ?

वही तो।

मन किया रो पड़े। मुश्किल से सँभाला अपने को। भूख ने कहा : अब खाती चल।

पोटली खोली और चबाने लगी।

चना भी कितना अच्छा होता है !

कितना स्वाद होता है इसमें !

और वह करता भी क्या ! दरवाजे पर तो जमदूत बैठे थे। आता भी कैसे वह ! कहीं सकन हो जाये, इसीलिए तो वह तमाम बातें उसने नहीं बताई थीं !

तभी शायद कहा था : मैं भी काहे का पापी हूँ, सती भी न थी—पापिन तो अकेली वही है !

विद्या की आँखों में आँसू छलक आये।

सुना होगा उसने ! मैं भूखी हूँ ! तभी तो आया था इधर ! तब का गया इधर आया ही कब ? मैंने ही तो मना कर दिया था उसे ! आता भी क्यों ?

अब उसने सोचा होगा क्या करूँ ? ऊपर चढ़कर क्यों न आया ? उसे तो आदत है !

ठोक है ! कहीं कोई देख न ले, शायद इसीसे नहीं आया।

विद्या के तो इस कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो गये कि वह भीतर आ जाता ! परन्तु नहीं आया, इस विचार से उसे ऐसा लगा जैसे रामभरोसे सचमुच भला आदमी था।

किस हुसियारी से उसने चने फेंके हैं भीतर ? कोई नहीं जान पाया। ऐसे ही रोज फेंक जाया करे तो ? मुट्ठी भर चने तो मजा दे गये। जी को ढाँढस बँध गया। अरे वह किसी से नहीं डरती। कल ठाड़ से पानी भरेगी।

गाम में मजूरी पर जायेगी। क्यों छिप-छिपकर वह अपने को पापिन साबित कर रही है? होगी सो देखी जायेगी। कमा-कमा के जो देगी इन काकी-ताइयों को, जो गुन गावेंगी। खुद को नहीं देखती? छिनालें जमाने भर की। बस खसम जी रहे हैं सो चैन है। यह हाथ भर का घूँघट बाहर और भीतर !

वह उठ खड़ी हुई।

शायद वह पीछे खड़ा हो !

छिपकर देखे तो !

उठकर ऊपर गई। चाँद डूब चला था। चमारों की बस्ती के पीछे। पेड़ों के पत्तों ने उसकी शक्ति को इधर आने से रोक दिया था। जाकर खड़ी हुई।

ध्यान आया, कोई भाँकते देख न ले। बैठ गई और डौरी पर से धीरे से सिर निकालकर भाँका।

किन्तु दो आदमी थे !

दो क्यों? क्या वह उसे बदनाम करायेगा ?

तभी सुनाई दिया, धीमा स्वर : 'इधर ही तो गया था !'

'आज सुसर की टाँगें न तोड़ दीं तो !'

'कैसी बातें करता था ! गाम से चला जाऊँगा !'

'मेरा तो माथा तभी ठनका था !'

देखा विद्या ने। दोनों के हाथों में लाँबे-लाँबे लट्टु थे।

काँप उठी।

यह रामभरोसे का आना जान गये? और अब उसे जान से मारने की घात लगाये खड़े हैं।

तभी सुनाई दिया : 'चिरंजी ! तू उधर से देख आ। मैं इधर से जाता हूँ। खबरदार ! चूकना नहीं। देखते ही टूट पड़ना।'

'मैंने कब चूक दिखाई है ?'

दोनों चले गये।

तो ! —विद्या चौंक उठी ।

रामभरोसे को यह मार डालेंगे ?

एकदम ही उसने कोठे से खोर उठाई और सिर पर डाली । उसे बचाना होगा । उसे इन कमीन कातिलों के बारे में बताना होगा । उसने साहस करके डौरी पकड़ी और पाँव बाहर लटकाये । पत्थर मिल गया । दूसरा, फिर तीसरा । अच्छा तो रास्ता था यहाँ ? नीचे रास्ते पर खड़ी होकर इधर-उधर देखा । अब किधर जाये ? वे लोग इधर गये हैं । तब शायद वह उधर गया होगा । विद्या अँधेरे में बढ़ी । दिल धड़क रहा था । क्या कर रही थी वह ! अकेली । घर के बाहर । पकड़ी गई तो ? घर की साँकल चढ़ी है भीतर से । कहाँ की रहेगी वह ! सारा गाम हँसेगा । इससे बढ़कर छिनाला क्या होगा !

जी किया, लौट जाये ।

लेकिन वह आता होगा । वे उसे मार डालेंगे ।

कैसे लौट सकती है वह !

पीपल आ गया ।

हठात् कोई झपटा । विद्या का कलेजा मुँह को आ गया ।

भट् !

लट्ट पड़ा !

एक और !

‘आह !!’ विद्या लुठक गई ।

‘भाग !’ किसी ने कहा । काम हो गया ।

विद्या पड़ी रही । सिर में चक्कर-सा आ गया था । जब आँखें खुलीं तो उठना चाहा । हाथ टेका तो लगा कंधा उखड़ जायेगा । आँख के पास बड़ा दर्द था । लट्ट कान पर से फिसल कर कंधे पर बैठा था । दूसरा कुहनी पर । बैठ नहीं सकी । फिर गिर पड़ी ।

‘आह !’ कराह निकल गई ।

पर चेतना लौट आई थी । मारने वाले भाग गये थे । उठा नहीं जा रहा

था। अंधेरा डरावना हो गया था। अब यहीं मर जायेगी। कल लोग देखेंगे। राह पर मरी पड़ी मिलेगी। जोर लगाया, दूसरे हाथ से। उठकर बैठ गई, सिर अभी तक चकरा रहा था। बैठकर छुआ। कान फट कर खून बह रहा था। गर्म था।

उठना चाहा, पर फिर लेट गई।

‘आह!! आह!!’

‘कौन?’ किसी ने धीरे से कहा : ‘अरे कौन पड़ा है?’

‘मैं हूँ।’ उसने कराहकर कहा।

आने वाला पास आ गया। उसने झुककर देखा।

‘कौन! अरे!’ स्वर गले में चढ़ गया जैसे झटका लगा हो।

‘विद्या!!’

‘चला जा यहाँ से! वे तुझे मार डालेंगे।’

‘कौन?’

‘चिरंजी-ग्यापा! मैंने डौरी से सुना था, वे तुझे मारने छिपे खड़े थे। तुझे बताने उतरी थी। अंधेरे में तुझे समझकर मार गये।’

‘विद्या!!’ उसका स्वर रूँध गया। बैठकर सँभाला उसने।

‘भाग जा! वे मार डालेंगे।’

‘मार डालने दे विद्या! पर तूने मेरे लिये...’

वह सुबक उठा।

‘उठ...’

‘नहीं उठा जाता...आह...’

सहारा दिया।

‘चल घर ले चलूँ तुझे।’ भरपिया स्वर।

‘भीतर से साँकल बंद है। बाहर वे होंगे।’

‘पर यहाँ तेरा रहना ठीक नहीं।’

‘मुझे छोड़ जा यहीं, कोई देख लेगा तुझे...’

‘देख लेने दे! मैं नहीं छोड़ सकता तुझे इस हालत में...’

‘मर जाऊंगी...’

‘यों भी तो मरेगी ही ।’

‘चला जा, तेरे पैर पड़नी हूँ ।’

रामभरोसे उठा और न जाने क्या देखा उसने क्षण भर ! फिर जब-दंस्ती उसने विद्या को उठाकर कंधे पर रख लिया । दर्द से वह मूर्च्छित-सी हो गई थी । जब विद्या का गर्म-गर्म बदन उसके शरीर से लगा, रामभरोसे को लगा, उसमें अपार शक्ति आ गई थी ।

उसने दीवार के पत्थर पकड़ लिये । दाँत भींचकर जोर लगाया और ऊपर चढ़ने लगा । विद्या ने अर्द्धमूर्च्छा में भी उसे ऐसे पकड़ लिया, जैसे छै महीने का बच्चा भी गोद में सीढ़ी चढ़ते समय, चढ़ने वाले को अनजाने ही मुट्ठी बाँधकर पकड़ लेता है । वह जीवन का अनजान संघर्ष होता है—जीवित रहने के लिये ।

रामभरोसे को लगा वह गिर जायेगा । पसीने से भीग गया । छिनाले के लिये जो रास्ता सुगम था, वह इस पवित्र स्त्री के बोझ से कितना कठिन हो गया था ।

मन ही मन कहा—भैरो महाराज ! हनुमान महाराज ! पार लगा दो आज ! लाज रखलो...

विद्या का हाथ लटक गया ।

एक हाथ से रामभरोसे ने विद्या को पकड़ा, दूसरे से पत्थर का टुकड़ा । लगा जैसे पाँव फिसल जायेगा, और दोनों नीचे जा पड़ेंगे... किंतु जीवन की तृष्णा बहुत बड़ी होती है । वह हाँफने लगा । मुँह में थूक आ गया । जीभ से चाटा तो विद्या के कान से गिरता लहू मुँह में चला गया ।

एक बार फिर जोर लगाया । लगा कि विद्या खिसल जायेगी, किंतु रामभरोसे ने डींगी पकड़ ली थी और उसने विद्या को उस पर झुका दिया और ऊपर चढ़कर उसने उसे छत पर खींच लिया । घर में आते-आते ही विद्या बेहोश हो गई ।

रामभरोसे उसे उठाये नीचे ले आया और आँगन में उसने लिटा

दिया। तब भी वह बैठी नहीं। रामभरोसे हाँफ रहा था किंतु उसने अपनी जाँघ उसके सिर के नीचे देकर उसे पंखा उठाकर हवा करना शुरू कर किया। घड़े पर निगाह गई। उल्टा था, पानी से खाली।

सोचा, बाहर से पानी ले आये। लेकिन लाता कैसे? ध्यान आया। कोई देख लेगा तो? ग्यापा-चिरंजी इधर ही तो लौटकर आये होंगे। यही तो विद्या ने कहा था!

विद्या को होश आया।

‘विद्या!’

‘आह...’

‘विद्या!’

‘हाँ S S S S...’

‘बहुत चोट लगी है?’

विद्या को लग रहा था जैसे बहुत-सी बरें चिपककर कान के पास काट रही हों। कंधा अलग उखड़ रहा था।

उसने कहा धीरे से : ‘मुझे बिठा दो।’

रामभरोसे ने सहारा दिया। अपनी छाती पर उसकी पीठ को टिका दिया। विद्या ने सिर उसके कंधे पर रख दिया।

रामभरोसे ने कहा : ‘अब अच्छी है पहले से?’

‘हाँ S S S S S...’ फिर हल्की कराह।

‘तू क्यों गई थी वहाँ?’ वह फुसफुसाया : ‘मैं कहता हूँ तुझे मार-मारकर ठीक कर दूँगा। क्यों गई थी इतना नीचे कूद कर। यह क्या तेरे बस का काम था!’

‘वे तुम्हें जान से मारने आये थे छिपकर! कायर कहीं के! कमीने!’

‘तो मैं मर ही तो जाता। कौन ऐसी दुनिया खाली हो जाती। पर तू क्या गई? तेरे चोट तो नहीं लगती?’ उसका स्वर भरी गया। ‘मेरा क्या हजार इलाज हो जाते। तू क्या करेगी अब? क्या कहेगी अब! कोई पूछेगा तो क्या बतायेगी अब?’

‘मैं सच कह दूंगी सब !’

‘लेकिन मानेगा कौन ?’

‘तो क्या वे तुझे मार जाते और मैं कुछ भी नहीं करती ! मेरे पीछे ही तो मारते !’

‘हट पगली !’ रामभरोसे ने कहा : ‘मेरे भाग में जो होगा, वह क्या तू छीन लेगी मुझसे ! खबरदार जो मेरे लिये अपने को दुख दिया । वैसे ही क्या तुझे कम दुख है । क्या जिदंगी भर ऐसे ही दूसरों के लिये मरती रहेगी ? माँ के पीछे यह सब हुआ, बीच में मैंने पलीता लगाया, अब फिर मेरे ही लिये ! मैं कहता हूँ तू सचमुच बहुत बड़ी मूर्ख है ।’

‘पानी...’

‘लाता हूँ । लेटी रहेगी न चुपचाप ?’

‘इधर से न जा !’

‘उधर से ही लाता हूँ ।’

रामभरोसे अकेला पीछे से कूदा । देवी की नीरव बग़ीची में एक कूँआ था । उसका पानी ठंडा और मीठा था । बगल में ही उसका अपना घर भी था । उसने बाल्टी ले ली, पानी खींचा और बाल्टी ले आया । जब दीवाल पर चढ़ने लगा, तो बाल्टी नीचे रख दी और रस्सी लेकर धीरे-धीरे चढ़ गया । ऊपर जाकर आराम से बाल्टी खींच ली, फिर नीचे चला गया ।

विद्या होश में थी ।

उसने बाल्टी के सामने ओक की, मगर रामभरोसे ने कहा : ‘ठहर ! गिलास कहाँ है ?’

‘वहाँ है पटिया पै ।’

गिलास से विद्या ने पानी पिया ।

‘और पीले ।’

‘नहीं बस ।’

तब रामभरोसे ने कहा : ‘घाव के खून पर न लग जाये पानी कहीं । पक जायेगा । और पियेगी ?’

‘नहीं ।’

घड़े को सीधा कर उसमें कुछ डाला और फिर विद्या के जूठे गिलास में बचा पानी डाल पीने लगा ।

‘हाय मेरा जूठा है ।’

‘हाँ, हाँ खबर है ।’

पीकर गिलास वहीं रख दिया और बोला : ‘अब कैसी है तबियत ?’

‘अब ठीक है ।’

‘कितने लट्टु पड़े ?’

‘दो ।’

‘सिर बच गया ?’

‘खोर थी सिर पर । कान पर फिसल गया ।’

रामभरोसे ने उसके हाथ पकड़ लिये और माथे से लगाकर कहा : ‘तू सचमुच कितनी अच्छी है । तेरा लहू बह गया और मेरी जान भी न गई ।’ फिर उसने दाँत पीसकर कहा : ‘ग्यापा ! चिरंजी !’

परंतु विद्या ने उसका हाथ थामकर कहा : ‘मुझे भीत के सहारे बिठा दो । छोड़ दो उन्हें । मरने दो ।’

उसने उसे भीत के सहारे कर दिया और तब कंधा छूकर कहा : ‘यहाँ लगी है ?’

‘हाँ ।’

‘अरी हड्डी-वड्डी तो नहीं टूटी !’

‘नहीं, खोर ने बचा ली ।’

रामभरोसे ने उसके माथे पर झूल आई लट को पीछे हटाया स्नेह से और कहा : ‘कमबखत ! अभागिन !’

‘जब तेरे कारन मैं बरबाद हुई, तो तुझे क्या जरूरत थी इतनी जोखों उठाने की ?’

‘मैं तो प्रासचित्त कर रहा था !’

‘किसका !’

‘अपने आपका ।’

‘क्या पाप किया था तूने ।’ उसने कहा : ‘रामभरोसे ! अकेली बैठी-बैठी मैं घंटों सोचती रही तुझे तो अम्मा और मामा ने भड़काया था । तभी न तूने ऐसा किया ?’

‘पर मुझे भी तो सोचना चाहिये था विद्या । कोई मुझसे कहे कूँए में कूद पड़, तो क्या मैं कूद पड़ूँगा ? पाप पाप है, यों बातों में छिपता थोड़े ही है ।’

विद्या चुप हो रही ।

रामभरोसे कहने लगा : ‘फूलो और हरदेव मे इसक था । पर इसक अच्छी चीज नहीं । इसक पाप की तरफ ले जाता है विद्या ।’

विद्या नहीं बोली । वह फिर बोला : ‘ब्याह के बिना कुछ नहीं करना चाहिये । छोटी थी फूलो । छोटा ही था हरदेव ! वह तेरी माँ थी तो वह भी एक तरङ्ग का मेरा बाप था विद्या । उसने मुझे बचपन में पाला था । और किसलिये ? कोई कारन नहीं था । वे दोनों बचपन में एक संग खेलते थे । तेरे नाना ने ही उसे पाला था । हरदेव से उसे प्यार था । कहता भी था—यह लड़का बड़ा हो जायगा तो इसी का अपनी बिटिया से ब्याह करूँगा । एक बार, हरदेव ही ने मुझे सब बताया था, वह मुझमें कुछ भी नहीं छिपाता था । नदी में नहा रहे थे । फूलो भँवर से फँस गई । हरदेव तब ऐसा था बारह का । बड़े-बड़े तैराकों की हिम्मत नहीं पड़ी । वह जान पर खेलकर कूद गया और निकाल लाया था उसे । तेरे नाना ने तब ही कहा था—यही मेरा दामाद बनेगा, क्योंकि यह मेरी बिटिया को जितने सुख से रखेगा उतना और कोई नहीं रख सकेगा । उसने उसे मदरसे में डाल दिया था । विद्या ! हरदेव मुझे बहुत चाहता था । कहता था—रामभरोसे ! तेरा जैसा मेरे एक बेटा होता तो काहे को मैं शराब, जुआ और इतने पाप करता ! उसके मन में एक आग-सी जला करती थी । कहता था—दुनिया ढोंग है, मैं भी ढोंगी हूँ । ढोंग के बिना कुछ भी नहीं है । एक और बार की बात है । मेले में एक हाथी बिगड़ गया । नागाओं का हाथो था । फूलो

सामने पड़ गई, तब यह हरदेव ही था, जो उसे फिर जान पर खेलकर बचा लाया था। तब वे दोनों अपने लिए और कुछ न सोचते। नाना कहता—हरदेव ! जल्दी-जल्दी पढ़कर तैयार हो जा। बहू को सँभाल अपनी। हरदेव हँसता। फूलो को अकेले में छोड़ता—क्योंरी तू मुझसे घूँघट नहीं करती ? ग्यारह ही की तो थी। ठेगा दिखाती और कहती : चल हट, नहीं करती। वह कहता—अच्छा, अच्छा। बड़े होने पर कराके रहूँगा। वह कहती—तुझसे तो कभी नहीं कलूँगी। उनके मन में यह पक्की बैठ गई थी कि दोनों खसम-लुगाई हैं। अचानक नाना को हैजा हुआ और मर गया। दोनों अनाथ रह गये। नाना का छोटा भैया मालिक बन बैठा घर का। जबरन उसने अघेड़ गिरिधर पंडित को फूल-सी लड़की रुपया लेकर ब्याह दी। हरदेव रोया कि यह मेरी बहू है, तो मारा उसे और हँसी में बात टाल दी और उसे कोठरी में बन्द कर दिया, हाथ-पाँव बाँधकर ब्याह के बखत। जब हरदेव छूटा, सब कुछ लुट चुका था। जी किया डूब मरे। नदी में डूबने जा रहा था कि मैं उसे राह पर मिला। तब मैं शायद चार या पाँच का था। गोरा था तब। हरदेव कहता था : मैं बड़ा खूबसूरत था तब। उसके जी में प्यार आ गया। मुझे उसने गोदी में उठा लिया और कहा—तू कौन है ? मैंने कहा—मुन्ना ! मुन्ना नहीं, उसने कहा—तू है राम-भरोसे ! राम के सिवा तेरा कौन है। विद्या ! फूलो ब्याह दी गई। उसने अपने चाचा से कहा—चाचा, मेरा तो ब्याह हो चुका। दादा कहते थे कि हरदेव मेरा आदमी है। अब मेरा इसके रहते दूसरा ब्याह होगा तो क्या मैं कुलटा नहीं हो जाऊँगी ?

विद्या सिसक उठी। रामभरोसे ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा : 'सुनती है कैसी लगन थी उनकी। बहुत सोचता हूँ वे पापी थे ! पर पापी नहीं थे विद्या। हरदेव कहता था—मैं हजार पापी हूँ, पर फूलो से मैंने पाप नहीं किया। वह तो मेरी ही बहू थी। दुनिया ने उसे जबरन मुझसे छीन लिया है। गिरिधर पंडित उसका पति नहीं, उसने तो उसे खरीदा है। खरीद लेने से ही क्या वह उसका खसम हो गया !'

विद्या ने कहा : 'नहीं रामभरोसे !' वह सुबकते हुए बोली : 'मत कह ! यह सब पाप की बात है । फेरे तो उसके उससे नहीं पड़े ना ?'

'हाँ, नहीं पड़े ।'

'फिर वे कैसे खसम-लुगाई हो गये । मेरे चाचा थे न ? कैसे ऊँचे आदमी थे ! वे तो धरम को ऊँचा मानते थे ।'

'उन्हें हरदेव और फूलो ने जहर देकर मारा था विद्या ।'

वह तनकर बैठ गई ।

'कैसे ?'

'हरदेव ड्राइवर हो गया । पैसा आ गया तो यहाँ मोटर लेकर आ गया । यहाँ फूलो को चिट्ठी लिखी । उसने लिखा कि घर में मेरा देवर है, मेरी लड़की है । हम कैसे मिल सकते हैं ! तब हरदेव ने कहा : लड़की का ब्याह कर दे । मैं लड़का देख डालता हूँ । तब उसने जाने कैसे सब इंतजाम कर दिया और तुझे तो टरका दिया गया । फिर भी चाचा रह गया तेरा । तब फूलो के हाथ इसने जहर दे दिया और उसने धीरे-धीरे खिला-कर चाचा को खतम करके रास्ता साफ कर दिया ।'

विद्या रोने लगी ।

'रो मत ऐसे ! धीरे रो ! धीरे !'

विद्या ने कहा : 'अम्मा ! मैं क्या करूँ ? अब तक तू मेरे मन से नहीं निकली थी, लेकिन अब मैं नहीं सह सकती । तू इतनी नीच थी । इतनी कमीन थी । हविस के पीछे तूने उस पवित्तर ब्रह्मचारी को भी मार डाला !'

'ब्रह्मचारी !' रामभरोसे ने कहा : 'कौन ब्रह्मचारी ?'

'चाचा ! रामभरोसे ! चाचा की कल की-सी याद है । वे गाम-गाम सुधार करते डोलते थे । उन्होंने धरम और समाज के काम का बीड़ा उठाया था । तूने देखा था उन्हें ! कैसी देवता-मूरत थी ! कैसी अच्छी-अच्छी बातें करते थे । कभी उन्होंने पाप नहीं किया ! उसी को उस छिनाल ने मार डाला ! वह मेरी माँ नहीं थी । मेरे तो बस बाप था वह सीधा-सादा-सा ।

मेरी कोई माँ नहीं थी । भगवान, मेरी माँ थी ही नहीं । माँ नाम की कोई चीज़ ऐसी नहीं हो सकती !’

रामभरोसे धीरे से किन्तु विचित्र ढंग से हँसा ।

विद्या चौंक उठी ।

‘हँसता क्यों है?’

‘इसलिए हँसता हूँ कि यह दुनिया बड़ी विचित्र है, बड़ी विचित्र है, इतनी कि कोई सोच भी नहीं सकता ।’

‘कैसे ? रामभरोसे ! अब इससे भी अजीब क्या होगा ! तभी चाचा मुझे सपनों में दिखते थे । हँसते हुए जैसे कहते थे : विद्या, संभल कर रह । यहाँ कदम-कदम पर पाप है । राह न भूल जाना । चाचा बड़े विद्वान थे रामभरोसे । वेद पढ़े थे वे ! समाजी थे । ढोंग की तो डग-डग पर पोल खोलते थे । उन्होंने तो बड़े-बड़े सास्त्रार्थों में जीत पाई थी । उस आदमी को इन्होंने मार डाला ! धरती माता । फट जा ! मुझे निगल जा ! मुझे निगल जा ! मुझे ल जा । मैं जीना नहीं चाहती रामभरोसे ! मैं क्या करूँगी जीकर ! ऐसी पापिन थी वह मेरी माँ ! नहीं, नहीं । बहुत भूलती रही हूँ, पर नहीं भूल सकती । चाचा कितने बिसवास में इसके हाथ से खाते रहे होंगे और कौन-से पत्थर की छाती करके वह छिनाल मुस्करानी हुई उन्हीं जहर खिलाती रही होगी । ओ ओ ओ ! मेरा सिर फटा जा रहा है । धोखा ! इतना बड़ा धोखा ! बुरा मरे तो मरे, पर ऐसे आदमी को इसलिए मारा कि वह पराये मरद के साथ रहना चाहती थी !’

रामभरोसे ने बहुत संयत स्वर से कहा : ‘विद्या ! मन को कड़ा कर ले ।’

‘क्यों ?’

‘सुन ! जो कहता हूँ मैं । वह भी सच है ।’

‘अब मुझे क्या डरा सकता है ? कह दे ! अब तो मैं मरूँगी । ऐसी दुनिया में मैं रहना ही नहीं चाहती ।’

‘फूलो ब्याह के बाद आई । उसे लगता था कि अपने मरद से छुड़ाकर

वह पराये मरद को बेच दी गई थी। पर होश आ गया था। आग के फेरे लगे और उसने मन ही मन तय किया। जो होना था सो हो गया। अब तो मेरा पति है वहीं जो आग के फेरे देकर लिवा लाया है और इसी के लिये जीना होगा। बूढ़ा है तो, अंधा है तो। पर पति ही पति है। और तब आया था तेरा चाचा घर। जवान ! सो रही थी एक रात फूलो। गिरिधर बाहर गये थे और तेरे उसी धरमात्मा चाचा ने तेरी माँ फूलो को जबरन....’

‘नहीं, नहीं...तू झूठ कहता है...’

‘मैं झूठ नहीं कहता विद्या। विद्या ! फूलो ने चिट्ठी में लिखा था हर-देव को—मैं पापिन हूँ। मेरे देवर ने मुझे पाप में जबरन डाला है कि मैं बूढ़े की औरत हूँ। तू मेरा असली पति है, अब बग करेगा लौट जा। शादी कर ले, और घर बसा ले। पर उसने लिखा—दुनिया की कोई ताकत नहीं जो मेरी आँखों में तुझे खराब कर सके। मेरे लिए तू है, और तू ही है। तू नहीं है तो मेरे लिए कुछ भी नहीं है ! विद्या ! ऐसी थी उनकी प्रीत। उस प्रीत में झटका लग गया तभी वह जलकर मर गई और वह खूनी कुत्ते की तरह पागल हो गया था। पर आग लगाई थी तेरे ब्रह्मचारी चाचा ने !’

उसने व्यंग्य से कहा।

देखा। विद्या सावध बैठी थी ! जैसे पत्थर की मूरत थी।

‘फूलो ने तेरे चाचा से कहा था—यह कितना बड़ा पाप है। तब उसने कहा था—भैया बूढ़े हैं। बूढ़े का व्याह करना पाप है। पर वे भाई हैं, मैं कैसे सामने सिर उठाऊँ ? पर तेरे साथ अत्याचार हुआ है, तो मैं शादी नहीं करूँगा और तेरे दुख को मिटा दूँगा !’

विद्या बैठी रही। बैठी रही।

रामभरोसे ने फिर कहा : ‘विद्या ! तू गिरिधर पंडित की नहीं, चाचा की ही बेटी है।’

‘जनम की पापिन !’ वह हँसी, भयानक मुद्रा से, किन्तु बहुत धीरे—
‘इतनी बड़ी पापिन हूँ मैं ! ऐसी है यह दुनिया, जिसमें हमारा धरम है ! यही है वह बिरादरी, जिसे मेरे चाचा....’ उसने हँसकर कहा : ‘मेरे पिता—

समाज कहते थे ! वे बड़े सुधार करते थे !!' वह फिर हँसी और उसने अपने दाँये हाथ से अपना माथा पकड़ लिया, जैसे चक्कर आ गया हो। रामभरोसे ने उसे दीवार से टिकाने को सीधा किया तो उसने उसके कंधे को ऐसे पकड़ लिया, जाने कहाँ डूबी जा रही थी।

रामभरोसे ने कहा : 'घबरा मत ! आँख खोलकर देख। कौन कहता है तू पाप की जनी है। बामनों में कितना पाप है, क्या तू नहीं जानती ? नीच जातों में घुटन नहीं। यहाँ घुट-घुटकर मरना पड़ता है। यहाँ हम ढोंग और ढकोसले को ऊपर रखते हैं। सब ! सब ऐसा ही करते हैं !'

'मुझे मत छू रामभरोसे ! तू पापी नहीं। मैं पापिन हूँ। मैं...मैं... कौन हूँ रामभरोसे ?'

'तू विद्या है। तू पवित्र है' 'विद्या !'

'तू मुझसे अब भी धिन नहीं करता रामभरोसे ?'

'नहीं विद्या। इसमें तेरा क्या कसूर है ?'

सूका उग आया था और फिर पौ फटने लगी।

पीछे घर के, कोई चिल्लाया : 'अरे यहाँ खून है। खून से भीगी खोर पड़ी है !'

वह स्वर ग्यापा का था।

चिरंजी का स्वर आया : 'अरे यहाँ किसका खून पड़ा है। है ! यहाँ भीत पर भी खून के दाग हैं !'

रामभरोसे घबराकर खड़ा हो गया। विद्या बैठी रही। उसका चेहरा फट पड़ गया।

'चिरंजी-ग्यापा हैं।' रामभरोसे ने कहा : 'मैं इधर से भाग जाता हूँ।'

'नहीं ! उधर नहीं।' विद्या ने कहा : 'उधर तो सब जाग गये होंगे।'

इस समय और भी स्वर सुनाई पड़े।

'विद्या मर गई शायद ?'

ग्यापा चिल्लाया : 'हाय मेरी बहन...तू मर गई...'

रामभरोसे ने विद्या की आँखों में भाँका जहाँ असह्य घृणा थी।

‘में किधर से जाऊँ?’

‘अभी ठहर जा । जब चले जायें तब जइयो ।’ कहकर उसने उसे पकड़ लिया । उसे फिर चक्कर आ गया था । उसने रामभरोसे के कंधे पर सिर रख दिया ।

ग्यापा का स्वर घर के सामने सुनाई दिया : ‘विद्या भाग गई, विद्या मर गई कहीं...’

घर के सामने कोलाहल होने लगा ।

दूर नगाड़ों पर चोट पड़ी । सती के मेले की आज शुरुआत हो गई थी । गाड़ी पर चित्र था सती का । वह पति को गोद में लिए चिता पर बैठी थी, जिसमें से आग की लपटें उठ रही थी । वैण्ड बज रहा था और डंडे बजाते रासधारी नाचते आ रहे थे । बीच-बीच में ‘जै जै’ का भीम स्वर सुनाई देता था । रात से ही गाँव वाले आके पड़े हुए थे ।

तभी घर के पीछे से चिरंजी चिल्लाया : ‘लेकिन खून तो नीचे होना चाहिये था, ऊपर भीत पर क्यों है?’

रामभरोसे फक पड़ गया ।

‘अरे भीतर कोई है!’

‘देखो, देखो!’

‘भागने न पावै!’

‘घेर लो, घेर लो!’

‘ओ छिनाल, तूने यार घुमा रखा है...’

‘तोड़ दो दरवाजा’, बाहर से धक्के लगने लगे ।

‘खोलो...’

‘अरे तोड़ दो...’

पीछे से स्वर आया : ‘अरे चढ़ जा चिरंजी!’

‘तू भी चढ़ जा, हे चढ़ जा...’

‘पकड़ लो, पकड़ लो...’

‘मुहल्ले की आँख में धूल भोंक के ऐसा पाप...’

और भीम स्वर आया : 'बोल सती भवानी फूलवती की जय ! बोल भवानी माता की जय !'

दरवाजा टूट गया । देखा ! निर्भय खड़ा था रामभरोसे और कंधे से टिकी खड़ी थी विद्या ।

'अरे पकड़ ले साले को !' छत से चिरंजी चिल्लाया ।

ग्यापा झपटा...पीछे ब्रजेन्दर...

उन्होंने रामभरोसे को पकड़ लिया और विद्या छिटककर गिरकर बेहोश हो गई । रामभरोसे पर जूते पड़ने लगे । वह चिल्लाया नहीं... पिटता रहा, पिटता रहा...

और स्वर आया : 'बोल सती भवानी फूलवती माता की जय !...'

'दे जूता...'

'पड़ी है छिताल !' औरतें घुस आई !

छानी पीटकर काकी ने आँख खोलती विद्या पर थूका : 'हाय रंडी...'

फिर कई स्त्रियों ने— आक् थू...

आक् थू...

और वही स्वर— बोल भवानी माता फूलवती की जय !...

'मर गया...'

'मर गया...'

'सिर से खून बह रहा है...'

'बेहोश हो गया है, बेहोश हो गया है...'

'अरे मक्कड़ किये पड़ा है...'

'और ये सुसारी...रंडी... एक लात...'

बैठती हुई विद्या फिर गिरी...

ताई ने थूका ठीक मुँह पर : आक् थू...

'हाय 'डी...'

'छोड़ दे ग्यापा, छोड़ दे, अब मर जायेगा, हाथ रोक दे...'

'मरने दो साले को...'

और वही भीम स्वर : 'बोल भवानी माता फूलवती की जय ! ...'

बाँसुरी बजती हुई...स्वर पर बजते डंडे...

तुमुल निनाद : 'बोल सती भवानीमाता की जय ! ...'

'हाय कैसी की बिटिया है...' औरतों ने पुकारा...

'निकलो गाँव से बाहर...'

'बोल सती की जय ! ...'

'हैं हैं मत छू। वह मर जायेगा।'

अब भीड़ सामने खड़ी थी। विद्या अपने दाँये हाथ के सहारे सरकने लगी...

वह आगे बढ़ी...उसने रामभरोसे का सिर छुआ...लोहू...

वह हँसी...

सब देखते रहे...

उस स्पर्श से रामभरोसे को होश आया। उसने देखा।

'मत छू विद्या, मुझे मत छू...तू पवित्र है, मुझे छूकर तुझे पाप लग जायेगा...'

भीड़ ठठाकर हँसी ..

फिर मस्त होकर बच्चे ताली बजाने लगे...

विद्या के हाथ में रक्त था रामभरोसे का। उसने देखा विद्या उस लोहू को फटी-फटी आँखों से देख रही थी...

विद्या ने पुकारा : 'रामभरोसे...'

रामभरोसे ने धीरे से कराहा।

'उठ रामभरोसे...'

'कहाँ चलेगी?'

'कहीं नहीं ! यही रहेंगे...' और उसने अपने माथे पर उसका लहू लगाकर कहा : 'रात बीत गई रामभरोसे ! उजाला हो गया...तू मेरा है...मैं तेरी हूँ...अब मुझे कोई डर नहीं...सुनता है न ?'

रामभरोसे ने सुना और उसका हाथ थाम लिया।

बाहर फिर भीम गर्जन हुआ : 'बोल सती भवानी की जय ! बोल सती भवानी की जय ! ...'

आकाश और पृथ्वी मानो एक स्वर से चिल्लाने लगे ' प्रतिध्वनित स्वर दिगंतों में हुमकने लगा ।

✻ ✻ ✻

